



# भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्नम् ।

।।हादमञ्जरीपरमागमसारवीतरागस्तुतितत्त्वविवेककल्पसूत्र  
स्वरूपसंबोधनप्रमेयकमलमार्त्तच्छुभ्रुतिसृष्टिसाख्य  
वेदान्तादिनानाग्रन्थसवलितम् ।

कुरुइ मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीष्टस्य ।

अर्हइ सर्वमेतच्च मुक्तिहारमसह्यतम् ॥

धर्मादिमुक्तिरथोऽय न तदभ्यात्परोवर ।

अत्रैवावस्थिता स्वर्ग मुक्तिद्यापि गमिष्यथ ॥

कस्मिदिहहापुराणे महापुरुषवाक्यम् ।

गोस्वामि भान्निपत्तोनिवासि

श्रीराधागोविन्दविद्यारत्नगोस्वामि-विरचितम् ।

मुक्तिदावात्तमानो च कुटारिणावज प्रभु ।

गोमनाथ महासिद्ध—मिथुराज वादादुर, ४

रायचन्द्रयतीन्द्रस्तु मनाच्च वागवाधक ।

चकार राजकीयान्ते शून्याकाशयेन्दु म ४

स्वामिसिद्ध दानकला टट्टकानां पुन पुन ।

प्रकाशकी विशाहा च राधागोविन्दगोस्वामी ॥

कलिकाता—राजधान्याम् ।

११८ नं बैठकछात्रा राजस्थित व्यापारिणि दन्ते

श्रीयदुनाथ वन्द्योपाध्यायेन मुद्रितम् ।

वीराब्द २४३२ ।



## उत्सर्गपत्रम् ।

भारतविद्वत्कुलशेखर, महामिह राय, त्र्योशुक्ल मेघराजकोठारि,  
वाहादुर, महोदय विद्वन्मानससरसोरुद्धसुख्यम् ।

हे महात्मन् ' आपके पूर्वपुरुष जैनकुलके गिरोमपि थे,  
और आप्ति जसि परम् पवित्र जैनकुलमे जन्म ग्रहणपूर्वक  
ग्रहण भक्तिका पराकाष्ठा प्रदग्गन स्वरूप होकर भारतवर्षीया  
जैनसमाज का अनाधारण उत्थति साधन कर रहे है इन् हेतु  
इह समीचीन् धर्मियोंके आप् एक श्रेष्ठ है एतत् विषय अना  
लोचना अनावश्यक इह प्राज्ञता प्रयुक्त विवेचनाधोन हो कर ;  
हमने इह जैनसिद्धांतरत्न नामक ग्रन्थ आपके हात्मे उपहार  
देते है, कारण आपके ग्रन्थसे पूर्ण प्रभावान् मनुष्य देखनेमे वहीत्  
विरल आते है कारण अन्यत्र वहीत् जन्मे देखनेमे आता है  
जो गजमुक्ता असूय्य है, लेकिन उह गजमुक्तासि व्याघ्रपत्नीयोंके  
निकट् प्रिय होय जाता है, किन्तु आपके ग्रन्थमे रत्नप्राप्ति को  
रत्नपरिचायक भिन्न अन्यत्र इह रत्न स्वरूप जैनसिद्धांतरत्नका  
उपलब्धि होना अयोग्यतासूत्रक दृश्य इह जानकर हमने आप  
दिके करकमलमे इह उपहार देते है आप्ने आद्याति दृष्टि-  
पूर्वक आदरके सहित ग्रहण करवि नै, हमारा अम सफल होय  
अलमतिविस्तारणैति ॥

श्रीराधागोविन्दगमा ।

## विज्ञापनम् ।

गोस्वामिराधागोविन्द सिद्धान्तानतिदुष्करान ।  
 कथं कुर्यादिति मृषा वितक माकृथा बुधा ॥  
 निर्गुण सगुणोवापि भूर्खं पडित एव वा ।  
 जैनशास्त्रविचारैऽस्मिन् क समथोऽस्ति भूतले ॥ २ ॥  
 अकस्मात् निद्रित स्वप्ने कथयामि कथामिमाम् ।  
 पूषपक्षाद्य सिद्धान्ता तत्रैव विमृषाम्यहम् ॥ ३ ॥  
 हृदि प्रसन्नता जाता सुधासिधुमिवाश्रित ।  
 समयेऽस्मिन् ऋषभोदेव प्रादुरासीत् क्षितानन ॥ ४ ॥  
 श्रोपाश्वनाथकरालम्बि साधुसाध्वीति सम्मुखे ।  
 एवमेव यद्ब्रवीति जागृहीति ब्रुवन् ययो ॥ ५ ॥  
 तत ऊत्याय शय्याया ध्यात्वा तच्चरणाम्बुजम् ।  
 आत्मान दुगत शोच्य त्यक्ततच्चरणाम्बुजम् ॥ ६ ॥  
 मेने धन्यामिवात्मान प्रभो सकरुण वच ।  
 स्मृत्वा च महदैश्वर्य्य न जाने किमभूत्तदा ॥ ७ ॥  
 तेनैव कारुण्यवलेन चित्ते  
 यभूव कर्तुं रचन सुवर्णि ।  
 विमृष्य गद्येन च कोमलेन  
 मुखेन धन्य सिद्धातामृत ज्ञत ॥ ८ ॥  
 ये ये माहाता किल हसभूता  
 जगत् पवित्रीकरणाद्यमागता ॥

ते ते तदुच्छिष्टनिपेविनो मे

कर्त्तुं विशुद्ध रचन प्रवीणा ॥ ६ ॥

हे पंडितोगण इह मूर्ख राधागोविन्द इह गूढ़ विषय किस्तरे विचार करेगी वा कर सकेगी, इम् विषयका मदेह आप लोग मत् करिऐगा, कारण जैनशास्त्र विचार विषयमे क्या सगुण क्या निर्गुण क्या पंडित क्या मूर्ख कीयभि समर्थगीन नहि हो गक्ते हय। लेकिन भगवत अहेण देवका कृपावलमेई, ईह अतीय गूढ सिद्धातरवको व्यक्त करेगी। लेकिन ऊह भगवत देवका कृपा कयसे अनुभव भया सो निखते है वा कहते हय। हमने सोते हये, निद्रित अवस्थामे एकरोज स्वप्न देखते भये न जाने किम हेतु अयमा स्वप्न अनुभव भया सो मैने कुछभि मालुम नहि कर सकी, लेकिन जो स्वप्नमे पूर्वपक्ष वो सिद्धातविचार कर रहे थे, उसि समय अकस्मात् चित्त प्रसन्न हो गया जानी मैने कोइ सुधारूप अमृत प्राप्त हो रह हे, इतने टिखाई आया यो भगवत पार्श्वनाथ जी महाराजके करावलम्बि भगवत ऋषभदेवजी महाराज मधुरहाम्यके सहित हमारे मम्मुखीन प्रादुर्भूत होकर कहने लगे ' हे राधागोविन्द तुमने उत्तम सिद्धात करते हो, तुमने यो सिद्धात स्वप्नमे विचार कियो, उसिको जाग्रत हो कर प्रकाश करो' इतना हि कह कर दोनो भगवत देवीने अतर्धान हो गये। इतना हि मे हमारा निद्राभग हो गया हमने भि विछोनामे ऊठ कर, ऊह भगवत दोनोके चरणपर ध्यान लगा कर, अपने हृदयको धन्य कर मानने लगे वो प्रभु भगवत देवीका कृपा यो ऐश्वर्यकु स्मरण कर जो क्या सुखानुभव भया

सो कीड सुरत प्रकाश नहि कर गते है लेकिन ऊहोकेई कृपा  
बलसे हमारे चित्तमे इह यथका रचना विषय सुधुदि हो गया ।  
ऊमि कृपाबलमे, हमने मूर्ख हो करभि कोमल गद्य भाषामे  
विचारपूर्वक एई सिद्धातामृत रचना करते भवे सुधीनोग हमारे  
रचनाको दोष नहि ग्रहण कर गुणोको ग्रहण कर समकृ  
पवित्त करे ॥

श्रीराधागोविन्दगोस्वामी ।

# शुद्धाशुद्धिपत्रम् ।

## प्रथमपादे ।

४	अपठ	घट
२	स्वग	सर्ग
१	दृष्टविषय	दृष्टविषय
५	आत्मालिते विज्ञान	आत्मालितविज्ञाने
४	अशित्युदीपकमन्त्र	अशित्युदीपकमन्त्र,

दिन्दि ।

१२	तच्छ न	यच्छ
१२	कर्त्तक आश्रयता	कर्त्तक अगत आश्रयता
११	कार्येण कारण	कार्यका कारण
२	बुद्धोबुद्धोरप्यसद्विषयत्व	बुद्धोबुद्धेरप्यसद्विषयत्व
१	प्रावरणतिरस्कारयन	प्रावरणतिरस्कारेण

दिन्दि ।

८	द्वि	द्वि
७	इह	अह
७	”	निमित्त यव करणा सचित् इय

## द्वितीयपादे ।

५	स्वप्रतुल्य	स्वाप्रतुल्य
८	मन्थत	मन्थेत
१०	यतस्तत्त्वदपे	यतस्तत्त्वदप
२	भौतिकान्नादपम्भो	भौतिकान्नादपम्भो
८	अपत्याविद्याय	अपत्यास्वीयाय
१	निरीवेतावशिवाकाङ्क्षेति	निरीची तावद्विराकराति
१	अथाकारत्व	अथाकारत्वं
५	अज्ञापयन्	अज्ञापयन्



७४	५	अथइ	अथ
		२७३ द्विदि ३५	
११	१	तत्तु	तदन्व
४८	४	घटासिंसति	घागसति
५१	११	अत्रागमथे	अत्रापगमूत

### द्वितीय पादे ।

द्विदि ।

६	१०	परितति	परिषामसति
६२	१	अपादित	आपादित

### द्वितीयखण्डस्य प्रथमपादे ।

७५	७	अति	युति
८	७	दृष्टान्तवचनव	दृष्टान्तवचनव
		द्विदि ।	
७८	८	अथभन्वडा	अथोक्त अथात्र
८४	५	जाता	जाना
८१	४	कत्वशादि	कत्वभीषतादि

### पठ पादे ।

११  
संज्ञत ।

११	८	पुरुषवातपूर्णा	पुरुषवातपूर्णा
१२	१	कर्मापूर्णा	कर्मानपूर्णा

द्विदि ।

८८	१	अथ	अस
१०	३	आयुक्त ।	आयुक्त
१४	२	परमाथ	परमाथ
	७	परमाथ	परमाथ

प अष्टम पाठ्य पद्य

### सप्तमपादे ।

संस्कृत ।

८ विदधाति विदधति

### अष्टमपादे ।

- ९ निरटयिष्य निरटयिष्यि
- १ धिद्वया धिद्वया
- ७ स स्वयं सन् स्वयं
- ४ परमाद्यगतस्याद्येष परमाद्योर्गतस्याद्यस्य
- १० सव्यप्रदक्षिण्यति सव्यप्रदक्षिण्यति
- ५ जयसा अजा गो मन्विषि समे ऐ कि दग्धसमुच्चिकि द्वयकाल  
तकवि मञ्जुस्वभाषसे अपच्युति कीदृ स्थिति कदा जाते हे  
वसाह शीमावरणादि मूल प्रकृति अन्तराय प्रयसव स्वभाव  
सिद्ध कभिनि प्रच्युत होता नही हे इसमाफिक प्रच्युत नही  
होम का नाम स्थिति हे ।
- १६ कथंभावपरिचयतुद्गलभ्यन्वाजाभनमाननाप्रशाणा  
आत्मप्रदीमानुप्रवेश प्रदीश्वरभ

९ रतिहर रति रतिहर

चिदि ।

७ एकालकाव एकालमाव

### नवम पादे ।

संस्कृत ।

- ८ समुलकापकर्षिता समुलकाप कविता
- १० तस्मिन् दृष्टदददृष्टा तस्मिन् दृष्टदददृष्ट
- ९ दिव्यशतौक्य दिव्यशतौक्य
- ३ यत्किराव्येषु यत्किराव्येषु

पृष्ठा	पं	अध्याय	शब्द
१६०	३	स च	सत्य
१६८	६	परमायनाथ	मित्यापरमायनाथ
१६८	३	सङ्गत सत्य	सङ्गत सत्य
"	८	भद्रमि	भद्रमि
१७०	३	ब्रह्मभद्र	ब्रह्मभद्र
	६	ज्ञानबीजस्य <sup>१</sup>	ज्ञानबीजस्य
१७२	९	बाध्यसत्तथीमात्	बाध्यसत्तथीमात्
	३	सद्रूपतात्	सद्रूपतात्
"	४	तदकार्यसम्भव	तद्वैकार्यसम्भव
१७३	२	न चात्र अचिरे	न चानाचचिरे
	४	सत्यज्ञानमिति	सत्य ज्ञानमिति
१७५	"	सत्य	सत्य
१७६		परीचसद्भावात्	पराचासद्भावात्
		द्विदि ।	
१६८	१	साङ्गत	साङ्गत
१७४	८	विद्वद्गत	विद्वद्गत
१७५	२	परान्तरादि	परान्तरादि
१७५	५	प्रमाणादीचरत्	प्रमाणादीचरत्
१७६	८	विद्विषयकपरीचस	विद्विषयक अपराचस
		संज्ञत ।	
१७७	९	सत्यज्ञानमन्	सत्य ज्ञानमन्
१७८	६	तत्रेच्छीपहार सुखेन पुरुषे निशुद्धतीनय शशादिधर्ममय	
		बीजवति नाथया । ब्रह्मज्ञानायादि	
१७८	"	इत्येतद्विधिपरत्वेदानींशर्दकवाक्यतया अचरीय प्रवचयद्विरव	
		पुरुषधी ब्रह्मवनाभ्यन्त इति समानत्वेत्यादि	
१८	१३	जीवाजीवाद्यब्रह्मरन्मिच्छरवस्थमाया नाम । तत्र संसृप्त्यादि	
१८	१४	जीव	जीवा
१८१	०	अलक्षित	अक्षरत्

पृष्ठा	प	अध्याय	पृष्ठ
१८१	०	मुख्याध्याय	मुख्याध्याय
१८१	२	पौर्व	पौर्व
१८२	१०	पुण्यापुण्य	पुण्यापुण्य
१८३	८	तीर्थादर	तीर्थद्वारे
१८४	१	अध्यात्मिकता	अध्यात्मिक कल्याण
"	२	तदर्थीऽपि नित्ये	अदि तदर्थीऽपि नित्ये
"	४	परमाणुगुण	कर्मोद्युगुण
"	८	उत्पादनद्वारे	उत्पादनद्वारे

हिन्दि ।

१०० ११

रहीए सब ब्रह्मज्ञानही पुरुषार्थ नही । पुरुषके व्यापार करके व्याप्य बोही पुरुषार्थ है इस ब्रह्मसमावभूतको उत्पत्ति विकार सञ्चार नही समझे है तैसी हीनमें अनित्य पदों करके तिस स्वभावकी अनुत्पत्तिपदसु नहीं उत्पत्तिक अभावमें व्यापारकी व्याप्यता रहता है । तिस सेती ब्रह्मका अरुणति पुरुषार्थ नही है । इति । नहीए हीनू है सोसा कहे है । फल एर जिज्ञास्यके भेद सेती । फलभेदकी विभाग करके दिखान है । अनुत्पत्ति फल है धर्मज्ञानका सैती जिज्ञासाकरके वस्तुतत्त्वसेती ज्ञानके अधीन पसेसे ज्ञानका फल एर जिज्ञासाका फल । सोसे फल भेद है । नही केवल स्वदपम फलभेद है तिसके उत्पत्तिपदक प्रकारभेदसे भी उक्ता भेद है सोसा कह है । वो अनु अनुज्ञानापस है ब्रह्मज्ञान केर अनुज्ञानांतरकी अपेक्षा नही रहता है ज्ञानज्ञानसेती अन्य अनुज्ञानांतरकी अपेक्षा नही करे है । नित्यनिमित्तकजमानुज्ञान सद् भावकी दूर किया इस हेतु सेती । पुरुष व्यापार करके व्याप्य भीह बोही पुरुषार्थ है जिज्ञास्यका भेद आत्यन्तिक है सो कह है । मन्वथ धन इति इस मूल में जो भविता है सो मन्वथे कर्ता अथ में ज्ञानप्रत्यय है । भविता है सो भावकके व्यापार करके हीने योग्य है इस वासे व्यापारके अधीन है । तिससेती पूर्ण ज्ञान कायमे नही है । भूत है सो मन्व है मन्व है उक्ता से नही कदाचित् अनेकात है । नही केवल स्वदससे जिज्ञास्यका भेद है ज्ञापक प्रत्ययप्रतिके भेदसे भी भेद हीता है । सोसा कहे है । अदिनाम प्रेरणा तिसकी प्रतिके भेदसे भी भेद है । अदिना सोसा वेदिकप्रण है विप्रव करके सामान्यके लक्षण सेती प्रतिके भेदका विभाग करके है अदि प्रेरणाधर्मकीह इति । आशाही पुरुषानिर्णय भेदोंक

सर्वभूत पक्षेभ्योऽप्यधीरपय वेदके विधिं शोचन्ताका उपदेशः है । इसी वाक्ये शैविनीने कहा  
 तिष्ठा ज्ञान उपदेशः है । श्री शोचन्ता माध्यम फेर पुरुषव्यापारमें भावनामि तिम्के  
 विषयम फेर शोचन्ताकेमें बौद्धी भावनाका विषय है तिम्के अधीन निरूपण पक्षे से प्रयत्न  
 की भावनाका विषय धातु बंधन अर्थ में है इस श्लोकात्पत्तिमे भावनाका तिम्के द्वारा याग  
 दिक्की को उपदेशता पायताकी अवगमनकराती है तथा शोचन्ताकेमुखकरके पुरुषकी  
 नियोग करती ही कहै । अथवा नही । ब्रह्मका शोचन्ता तो पुरुषकी अवबोध करती  
 ही से केवल नही प्रकट करती है अवबोध कहाम करती है प्रकटनरहित अवबोध को  
 शोचन्ताकेपक्षे मीती । ननु ब्रह्मकार्या । आत्मा प्रातप्य ए मूलविधिपर शोचन्ता है एवमि  
 एकवाक्यता करके अवबोधन प्रकटि करने भय पुरुष ब्रह्मका अवबोध करता है ।  
 समानपथा धन्य शोचन्ता करके ब्रह्मशोचन्ताका है । इसमिती कह है । नही पुरुष  
 अवबोधमें नियुक्त होताहै । इत्य पतात्प्य है । नही ब्रह्मसाक्षात्कारम पुरुषकी  
 नियोजन करना तिम्की ब्रह्मभाव करके निरूपणमे । अथाप्यपक्षेमे । नही उपमाना  
 में तिष्ठा भी ज्ञानप्रकृत्यमें शैवभावका अत्यव्यतिरेक अतिष्ठ पक्षे करके प्राप्त ज्ञानमे  
 अभिधेय है । शोचन्ताकेम भी नही तिष्ठा भी अधीतरूप की पुरुष ज्ञाना है पताप्य  
 प्रमको शोचन्ता अप्यत्र होता है यदाही शोचन्ता करके है । यथा इतिष्ठपक्षे विधि ।  
 शोचन्ताकेम शोचन्ता करके तिम्को पर उरभी आद्यज्ञानविधिपर शोचन्ताके विधि  
 आद्यतत्वका विनियम नही होता है शोचन्ता नही होता है नही तदाद्यतत्वपर है  
 किन्तु तिसके ज्ञान विधि पर है जिसे परशोर वेदो प्रनाके अर्थ है । नही शोचन्ता  
 शोचन्ताकेपक्षे अधीतरूपमे अत्यपरमे भी शोचन्ताके विनियम है । समारीपथाभी  
 प्रममे श्लोकात्पत्ति होता । तिसमिती शोचन्ताकेपक्षे शोचन्ता नही है अतिष्ठ भया । फेर  
 शोचन्ताकेम है ए शैविनी की रूप न अनुपय क्रियापथा उर प्राप्य चित्तमखन्तरप्य ।  
 इति ननु अथा शोचन्ता करता है शोचन्ता । अथा अनुष्ठानक वासन्ती । अभिमतधर्मकी  
 सिद्धि है अथा प्रम कहते हैं । तथा । धनका कथा लक्षण है तथा प्रमाप्य है । तव  
 उरपर । सुधी इत्या उरर सावधान पक्षे । पूर्वमीमांसा में शैविनी मुनिने । श्री  
 शोचन्ताका शोचन्ताकेपक्षे । फेर शोचन्ताके प्रकृतमे आया श्री अर्थ । इसरे शोचन्ताके  
 का सर्वत्र प्रचार है ।

एवं भवत्यतराम् ।

॥ नमोऽर्हते ॥

भाष्यसार-

# जैनसिद्धान्तरत्नम् ।

अथ भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने बौद्धनिरामोनाम  
प्रथम खण्डोन्निख्यते ॥

पूर्णाणन्दमनिन्दामन्तरहित वर्च पर शाश्वतम्  
स्वर्ग स्थान-वसानकारणपर नत्वा किमप्यहुतम् ।  
ज्ञानाधानगुरु प्रणम्य च यथाज्ञान निदानञ्च मे  
कुर्व्वे बौद्धनिराममक्षतरति" सिद्धान्तरत्ने मुदा ॥

तस्यास्य सौगतमतेन असंबन्धोऽभिधीयते । सर्वोऽ-  
प्यय सिद्धान्तरत्न प्रत्यक्षानुमानाभ्या अनवगतेष्टानिष्ट-  
प्राप्तिपरिहारोपायप्रकाशनपर सर्वपुरुषाणा निसर्गत

यौड मतके सहित ईम जैन मतका उपेक्षारूप सम्बन्ध  
कहना होता है । जिम उपायमे ति अभिलपित फलका  
प्राप्तियो अनिष्टक्रियाका त्याग प्रत्यक्षवा अनुमानसेति भादुम

एव तत्प्राप्तिपरिहारयोरिष्टत्वात् । दुष्टविषये चैष्टा-  
निष्टप्राप्तिपरिहारोपायज्ञानस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यामेव  
सिद्धत्वान्नागमान्वेषणा । न चासति जन्मान्तरसम्बन्धा-  
त्मास्तित्वे विज्ञाने जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेष्ठा  
स्यात् । स्वभाववादिदर्शनात् तस्मात् जन्मान्तर-  
सम्बन्धात्मास्तित्वे जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारो  
पायविशेषे च जैनमिद्वान्तरत्न अथवा जैनशास्त्र  
प्रवर्तते ॥ १ ॥

नहि होसका लेकिन ईह मय्युणं भीमांसका मालुम होनाहि  
ईह जैन सिद्धान्तरत्नका मुखर जहेशर हय ॥ जिस हेतु  
मनुपरमावहि स्वभावमिह इष्टलाभवो अनिष्टको दूर करणेमे  
व्यग्र होते है वा रहते है । लौकिक ईष्टलाभवो अनिष्ट निवृत्तिका  
उपाय प्रत्यक्ष वा अनुमानसे ति मालुम करते है इस सम्बन्धमे  
शास्त्रप्रमाणका उपेक्षा नहि है । कारण शरीरातिरिक्त अथात्  
इह देहमेति अथर देहका सम्बन्धयुक्तता आत्माका अस्तित्व  
स्वीकार नहि करणेसे जन्मान्तरीण इष्टलाभ वा अनिष्टका निवृत्ति  
निमित्त इच्छा नहि होय सक्ता है । जैसे वा जिस हेतु अस्तित्व  
स्वीकारके परामुख चार्वाकगणोके तादृश इच्छा देखनेमे नहि  
आता है । इमिवास्तु जन्मान्तरीय सम्बन्ध आत्माका अस्तित्ववो  
इष्टलाभादिवो अनिष्टनिवृत्तिका उपाय विशेष जाननेवास्ते इह  
जैनमिद्वान्तरत्नका स्थिति वा स्थापन होता है ॥ १ ॥

श्रुतेश्च ॥ यद्यं प्रेतं विचित्रिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्ये के  
 नायमस्तीति चैक ईत्युपक्रम्यास्तीत्युवोपलब्धव्य ईत्ये व-  
 मादिनिर्णयदर्शनात् । यथा च मरण प्राप्येतुप-  
 क्रमस्य योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन । स्थाणु-  
 मन्येऽनुसयान्ति यथाकर्म तथा श्रुतमूर्द्धति च । स्वय  
 ज्योतिरितुपक्रमस्य त विद्याकर्मणी समन्वारभेते पुण्यो

कोई कहते हैं मनुष्यादिका मृत्यु होनेसे लोकान्तर  
 है, कोई कहते हैं लोकान्तर नहीं है, इसप्रकारके  
 बातोंमें हमारे चित्तमें लोकान्तरके अस्तित्व विषयमें  
 संदेह होता है । लेकिन वेदमें कहते हैं—योनिमन्ये  
 प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन इत्यादि ॥ इह वचनका मतलब इह  
 है देही देहत्यागपरमि अपना कर्माशुभायी देहि मनुष्यादि वा  
 इत्यादिरूप देहिपरिग्रह करते हैं, तथापि तदा परमिधर्माऽधर्म  
 वो पुण्य पाप जह प्राप्त देहिको आश्रय करता है जिनका जयसा  
 कर्म जाकी श्रेयसाहि शान्दानुभोदित जन्मादिक् होता है  
 श्रेयसा कुतनिश्चय है, अवरमि वेदमें कहते हैं मृत्युको प्राप्त  
 होकर ईमि उपक्रमकर उपसंहारमें शरीर लाभके निमित्तमें श्रेहि  
 आत्मा मनुष्यादियोनि प्राप्त होनेसे श्रेयसाहि इत्यादि शरीर ग्रह  
 न करते हैं । अथवा जिनका जयसा कर्म श्रेयसाहि जन्मादि  
 लाभ होता है अथवा वेदान्तमें स्वयं ज्योतिर्इमि वचनकु उपक्रम  
 करके उपसंहारमें गृहीत होता है, ज्ञान वावोधर्माऽधर्मरूप  
 कर्म उसि मरणजनित व्यक्ति कु अनुगमन करता है । पुण्यकर्मसे



वे पुण्येण कर्मणा भवति । ज्ञापयिष्यामीतुपक्रम्य  
 विज्ञानमय ईति च व्यतिरिक्तात्मास्तित्वम् । तत्प्रत्याक्ष  
 विषयमेवेति चेन्न वादिषिप्रतिपत्तिदर्शनात् । न हि  
 देहान्तरसम्बन्धिन आत्मन प्रत्याक्षेणास्तित्वविज्ञाने  
 लोकायतिका वौडाश्च न प्रतिकूरा स्युर्नास्त्यात्मेति  
 वदन्त ॥ २ ॥

नहि घटादौ प्रत्याक्षविषये कश्चिद् विप्रतिपद्यते  
 नास्ति घट ईति । स्यात्वादौ पुरुषादिदर्शनात्नेति

स्वगादिरुप पुण्यानोक मिलता हे । अथ इति प्रश्नोत्तर विषयमे  
 निधारित पुत्र क यु तिमे कहते हे यो तुमको मालुम कराते ह्य  
 इह उपक्रम करके आत्मा विज्ञानस्वरुप इमि रुपमे आत्मा शरीरा  
 तिरिक्त रुपमे प्रतिपादित होता हे ईसिवास्ते देहातिरिक्त  
 आत्माका अस्तित्व विषयमे शास्त्रहि प्रमाण हे । ओहि आत्मा  
 प्रत्याक्ष प्रमाणका गोचर कहके स्वीकारकिया नहि जाता हे, जिस  
 हेतु आत्मविषयमेवादिगणोके नानाप्रकार परस्पर विरोधमे नाना  
 प्रकारका मतामत मालुम होता हे । एक देहमे अथर देहका  
 सम्बन्ध करे अथसा प्रकार, यो आत्माका प्रमाण होतातो  
 धीश्रयोचार्वाक कभिभि देहातिरिक्त आत्मा कहके हमनोग  
 के विरोधवादि २ ॥

चेत्, न निरूपितेरभावात् । नहि प्रत्याक्षेण  
 निरूपिते स्थाण्णादौ विप्रतिपत्तिर्भवति । वैनाशिका-  
 स्त्वहमिति प्रत्याये जायमानेऽपि देहान्तरव्यतिरिक्तस्य  
 नास्तित्वमेव प्रतिजानते । तस्मात् प्रत्याक्षविषयवैल-  
 क्षणात् प्रत्याक्षान्नात्मास्तित्वसिद्धिस्तथानुमानादपि ।  
 श्रुत्यात्मास्तित्वे लिङ्गस्य दर्शितत्वात् लिङ्गस्य प्रत्याक्ष-  
 विषयत्वान्नेति चेत् न जन्मान्तरमन्वधस्याग्रहणात्

वा घट नहि ह्य, अथवा विरुद्ध मत नहि इत्य । यो कहोतो  
 प्रत्यक्षसिद्ध वृक्षमेभि, मनुष्योका पुरुषरूपमे ज्ञान होते देखा  
 जाता ह्य । ( प्रत्यक्षसिद्ध आत्मा मे विरुद्धमति वा बुद्धि  
 को नहि हो सकेगा ) इसप्रकारके आपत्ति वा उत्तर करना  
 नयायमज्ञत नहि ह्यो मक्ता ह्य जिस हेतु जिस मनुष्योको  
 वृक्षरूपका निश्चय ज्ञान नहि है, तिसि कुवृक्षमे पुरुषरूपका भ्रम  
 हो सक्ता है अथवा होता है जिस कुवृक्षरूपका निश्चय है उस  
 कुपुरुषयोधकरूप भ्रम नहि होता है किन्तु आत्माका अज्ञ अथवा  
 निश्चय ज्ञान रहतेभि बौद्ध वा लोकायतिक वा चार्वाकगणोने आत्मा  
 देहातिरिक्त नहि ह्य कहके स्वीकार करते है प्रत्यक्षके विषय  
 घटादिके सहित इह आत्माका वैलक्षण्य रहनेसे प्रत्यक्षप्रमाणसे  
 ति देह भिन्न आत्माप्रमाणित नहि होय शक्ते है । वो यमि प्रकारके  
 अनुमानमेभि कह आत्मा प्रमाणित नहि होते इत्य । यो कहो  
 ये दृक् प्रमाणसेति आत्माका परिचायक धर्म सुखदुःखादि अभि

आगमेन त्वात्मास्तित्वेऽवगते सिद्धान्तरत्नप्रदर्शित-  
 लौकिकलिङ्गविशेषैश्च तदनुसारिणो मीमांसका  
 त्कार्किकाश्चाह प्रत्ययलिङ्गानिच सिद्धान्तान्येव स्वमति-  
 प्रभवाणीति कल्पयन्तो वदन्ति प्रत्यक्षधानुमेयथा-  
 त्मेति । सर्वथाप्यस्तथात्मा देहान्तरसम्बन्धीत्यैवप्रतिपत्ते-  
 र्देहान्तर-गतेष्टानिष्ट-प्राप्तिपरिहारोपाय-विशेषार्थिनस्त-  
 द्विशेषज्ञापनाय बौद्धनिरासकाण्ड समारम्भम् ॥ ३ ॥

हित मया ह्य, उह प्रत्यक्षका विषय है उससेति आत्मा अनुमित  
 होयगे वा होते है तबमि आत्माका जन्मान्तरसम्बन्ध अनुमित  
 नहि हो सके ह्य, उह केवल आगम प्रमाणसेति मालुम करने  
 होगा । शास्त्रप्रमाणयो सिद्धान्तरत्नप्रदर्शित लौकिक लिङ्गविशेषमे  
 श्वासप्रश्वासादि प्रभृतिसेति तादृश आत्माका विद्यमानता मालुम  
 करनेसेई सिद्धान्तरत्नानुसारि मीमांसक यो तार्किकगण सिद्धान्त  
 रत्नोक्त ईह ज्ञानयो जेनसिद्धान्त लिङ्गममूह उह जोगका निज बुझि  
 उहासित इसि प्रकारके कल्पनाकर आत्मा प्रत्यक्ष अनुमेय कहते  
 रहते ह्य । शास्त्र वा अनुमानादिमे जिसि प्रकारकेई होयन क्यो  
 जिन बुदेहान्तर स व धीय आत्माका अस्तित्व मालुम कर सके है  
 वा मालुम किये है, उहि कोई अनर देहमे स भाष्यमान इष्ट फल  
 लाभयो अष्टनिवृत्तिनिमित्त उसको उपाय विशेषमें लाभका  
 इच्छा होय वा होय सक्ता है ओहि उपाय विशेषरूप ज्ञापन जनेर  
 बौद्धनिरासकाण्डस्वरूप सिद्धान्तरत्नका प्रथमभाग प्रारम्भ हुवा  
 ॥ ३ ॥

नत्वात्मन इष्टानिष्टप्राप्तिपरिष्ठारेच्छाकारणमात्म-  
विषयमज्ञान कर्तृत्वभोक्तृस्वरूपाभिमानलक्षण त  
द्विपरीत स्वशास्त्रोक्तसाधनैस्तृष्णादिमुक्तसंप्राप्तिर्भूत-  
स्वाभाविकात्मरूपमा जीवस्य सदोर्द्धगतिरालोकाकाश-  
स्थितिर्वासुक्ति । सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं रत्नत्रय  
तत् साधन । सम्यगित्यस्यार्थ — आत्मानात्मविवेकेन  
पदार्थानामवगमः सम्यग्ज्ञानम्, रागद्वेषशून्यतया  
पदार्थानामवलोकनं समागदर्शनम्, फलनैरपेक्षेण  
कर्मणामघातिनामनुष्ठानं समागचारित्रामिति रत्न-  
त्रयं मुक्तिसाधनञ्चेति रत्नवदुपादेयमित्यर्थ ॥ ४ ॥

हम कर्ता हम भोक्ता ऐसा अभिमानमे आत्मविषयक अज्ञान  
जो है सो आत्मका स्वरूपको आवरण करता है । सोई अज्ञानसे  
इष्टलाभ को अनिष्टनिवृत्तिका इच्छाको पैदा करता है, जोही  
अज्ञानको उरुका विपरीत, जेनशास्त्रोक्त साधनमे कहा गया आठ  
कर्ममे मुक्तिलाभ होनेसे स्वाभाविक आत्मस्वरूपका आविर्भाव  
होता है । तब जीव ऊर्द्धगतिप्राप्ति होकर आलोकमय आकाश  
में स्थिति करे उसिका नाम मुक्ति है । ज्ञान दर्शन चारित्र  
यह तिनहि मुक्तिका कारण है ॥ ४ ॥

अथ ग्रन्थारम्भ ।

वौह श्रुतिं प्रमाणयन्ति यथा ॥ “नैवेह किञ्चन्नाग्र  
 चासीत् ।” अस्यार्थ — ईह ससारमण्डले किञ्चन  
 किञ्चिदपि नामरूपप्रविभक्तविशेष, नैवासीत् न वभूव  
 प्रागुत्पत्तेर्मीनच्चादे । किशून्यमेव वभूव शून्यमेव स्यात् ?  
 “नैवेह किञ्चनेति” श्रुते । न कार्य्य कारण वासीत्  
 उत्पत्तेश्च । उत्पद्यते हि घट । अत प्रागुत्पत्तेर्घटस्य  
 नास्तित्वम् । ननु कारणस्य न नास्तित्व मृत

वौहोने वेदवाक्यमेति इम प्रकारके मत प्रकाग वारते है ।  
 मन प्रभृतिका सृष्टि पूर्वमे ईह ससारमण्डलमे नाम रूपादि हेतुमे  
 ति विशेषरूपमे कुछ भि दिखाड नहि आताथा वा नहि था । तव  
 क्या सम्पूर्ण शृण्यहि था क्यो “कुछभि नहि था” इति वेदवाक्यके  
 प्रमाणतासुचक सम्पूर्ण जगत् शृण्यमयत्वद् सम्भव होता ह्य  
 योहेतु काय्य वा कारण कुछभि नहि था । जिस हेतु घटादि  
 कार्य्य उत्पन्न होता ह्य इति निमित्त उत्पत्तिका पूर्वमे उमिका  
 अस्तित्व नहि था कहना चाहिये । यो दृष्ट नहि होता है  
 उसिका प्रभाव मानना चाहिये । सो हीनेमे उत्पत्तिका पूर्वमे  
 काय्यका दृष्टि नहि होता ह्य, इस निमित्त काय्यका अस्तित्वा-  
 भाव स्वीकार कीया जाय शक्ता ह्य । घटादि कार्य्यका उत्पत्तिके  
 पूर्वमे मृत्पिण्डादिरूप कारण प्रत्यक्ष होता ह्य, इमिवास्ते

पिण्डादिदर्शनात् । दन्तोपलभ्यते तस्यैव नास्तिता  
 अस्तु कार्यस्य न तु कारणस्योपलभ्यमानत्वात् । न ।  
 प्रागुत्पत्तेः सर्वानुपलम्भात् । अनुपलब्धिश्चेद्भावे  
 हेतुः सर्वस्य जगत प्रागुत्पत्तेर्न कारण कार्यस्योप-  
 लभ्यते । तस्मात् सर्वस्यैवाभावोऽस्तु । न । मृत्यु-  
 नैवेदमावृतमासीदिति श्रुतेः । यदि हि किञ्चिदपि  
 नासीत् । येनाव्रियते यच्चाव्रियते तदा नावच्यन्  
 मृत्युनैवेदमावृतमिति । नहि भवति गगनकुसुमा-  
 ष्छन्नो वन्ध्यापुत्र इति ॥ १ ॥

उसका अस्तित्व स्वीकार करना ज्ञेयगा, इमितरहके मीमासाभि  
 समीचिन वा प्रम सनीय नहि होय शक्ता हय, जिम हेतु सम्पूर्ण  
 पदार्थइका उत्पत्तिका पूर्वमे उपलब्धि नहि होता हय । यो उप-  
 लब्धि नहि हो नाई वसुका अभाव जापक होय, तव सृष्टिका  
 पूर्वमे कार्यत्रो कारणस्वरूप सम्पूर्ण जगतनाभि उपलब्धिता नहि  
 या, उसि हेतु सम्पूर्ण जगत्का अभावसिद्ध होता होय, इसि-  
 वास्ते शून्यवादइ सब होता है या पर्यवसित होता है ।  
 बोद्धोका इह मतपरुखन निमित्तक सिद्धातवादि जेन कहते हय,  
 तुमारा इह सिद्धान्त युक्ति वा प्रमाण विरुद्ध दाहके अयाह्य होता  
 हय, जिस हेतु इह श्रुतिमे कथित हुवा है इह सम्पूर्ण जगत  
 मृत्यु कर्तृक आहतया, जिम हेतु सृष्टिका पूर्वमे कुछ भि नहि  
 रहता, तव मृत्यु कर्तृक आहत या अत्रमा वचन वेदमे कथित

ब्रवीति च मृत्युनैवेदमावृतमासीदिति । तस्मात्  
 येनावृत कारणेन यच्चावृत कार्य्य प्रागुत्पत्तेस्तदुभय  
 मामीत् च श्रुते प्रजाप्यात् । यनुमेयत्वाच्च । अनु  
 मीयते च प्रागुत्पत्ते कार्य्यकारणयोरस्तित्वं ।  
 कार्य्यस्य हि सतीजायमानस्य कारणे सतुत्पत्ति-  
 दर्शनात् । असति चादर्शनात् । जगतोऽपि प्रागुत्-  
 पत्ते कारणास्तित्वमनुमीयते घटादिकारणास्तित्व-  
 नहि होता । यथाका पुत्र आकाशमुष्य मेति शोभित इया है  
 अयमा वाक्य कीदं नहि कहता या कहता नहि ह्य ॥ १ ॥

यो मृष्टिका पृथमे कीद पदार्थद नहि रहता, तव सतु  
 कश्च क जगत् प्राप्त रहना अयमा कहना वेदका सर्वतोभाव  
 मेति अमदत होता । पिस हेतु श्रुतिमे इस प्रकार कहने है ।  
 उनके मतानुसारे अयमा हि जाना चाहिये, यो कारणमेति यो  
 कार्य्य प्राप्त था, मृष्टिका पृथमे उह दोतोई सूक्ष्मरूपमे विद्यमान  
 था । मृष्टिका पृथमे कार्य्य वा कारणक अस्तित्व अनुमानमेति मि  
 प्रमाणित होता है । कारणका सत्तामेव कार्य्यका उत्पत्ति दिखाइ  
 आता है । कारण भङ्ग रहनेमे, कार्य्यका उत्पत्ति दिखाई नहि  
 आता है । अयमा घटकार्य्येव कारण नृत्विण्ड, चक्र बीजुलाल  
 प्रभृतिना महावद घटका उत्पत्ति देखा जाता ह्य, वो नहि  
 रहनेमे उत्पत्ति दिखाई नहि आता है । उमि प्रकार जगत  
 कार्य्यकाभि उत्पत्तिका पृथ मे कारणका अस्तित्व अनुमान करने  
 हीयगा, नहि रहनेमे जगत् कार्य्य उत्पन्न नहि होता ।

वत् । घटाटिकारणस्याप्यसत्वमेवानुपमृदा मृत्-  
 पिण्डादिक घटाद्यनुत्पत्तेरिति चेन्न । मृदादेः कारण-  
 त्वात् । मृत्सुवर्णादि हि तत्र कारण घटरुचकादे  
 न पिण्डाद्याकारविशेषः । तदभावे तदभावात् ।  
 असत्यपि पिण्डाकारविशेषे मृत्सुवर्णादिकारणद्रव्य-  
 मात्रादेव घटरुचकादिकार्यत्पत्तिर्दृश्यते । तस्मान्न  
 पिण्डाकारविशेषो घटरुचकादिकारणम् । असति तु  
 मृत्सुवर्णादिद्रव्ये घटरुचकादिर्न जायत इति  
 मृत्सुवर्णादिद्रव्यमेव कारणं न तु पिण्डाकार-  
 विशेषः ॥ २ ॥

शून्यथादीं यौद्ध कहते हय—मृत्पिण्डरूप कारणको विनाश  
 गहि करके घटकार्यका उत्पत्ति नहि होता हय, इमिवास्ते  
 मृत्पिण्डका ध्व सरूप अभावसे ति घटका उत्पत्ति भया हय अयसा  
 मानना चाहिये । इह दृष्टान्तमेति अभावमेति समुदय जगत्  
 का उत्पत्ति होता हय कहेंगे । सृष्टिका पूर्वमे जगत् कारणका  
 घम्नित्वानुमापक कोई प्रमाण नहि हय । जेन कहते हय, ईह  
 बुद्धमत नयायसङ्गत नहि हो यज्ञे हय, जिसहेतु घटकार्यका  
 प्रति मृत्पिण्डादि कारण होता है, रुचक ( आभरण विशेष ) कार्य  
 का प्रति सुवर्ण हि कारण होता है, पिण्डादि आकारस्वरूप विशेष  
 कारण नहि होता हय, जिस हेतु पिण्डादि आकारादिविशेष  
 नहि उत्पत्ति भि, सृष्टिका वा सुवर्णादि से ति घटरुचकादिना



सर्वं हि कारण कार्यमुत्पादयत् पूर्वोत्पन्न-  
 स्वात्मकार्यस्य तिरोधानं कुर्वन् कार्यान्तरमुत्-  
 पादयति । एकस्मिन् कारणे युगपदेककार्य-  
 विरोधात् । न च पूर्वकार्योपमर्दे कारणस्य स्वात्मोप-  
 मर्दो भवति । तस्मात् पिण्डायुपमर्दे कार्योत्पत्ति-  
 दर्शनमहेतु प्रागुत्पत्ते कारणसत्त्वे । पिण्डादि

उत्पत्ति देखनेमें आता है । शक्तिका सुवर्णादि नहि रहनेसे  
 घटबो आभरणादि कार्य उत्पन्न नहि होता है ॥ २ ॥

सम्पूर्ण कारणकार्य उत्पादन करनेके बखत पूर्वोत्पन्न कार्यजु  
 तिरोहित वा दूर करने, अनर कार्यजु उत्पादन करता है ।  
 जिस हेतु विरोधताके वशीभूत एक कालमें एक उत्पादान कारणमें  
 अनेक कार्य रहने नहि शक्ते है । यथा—शुत्पिण्डरूप कार्यका  
 विनाश होनेसे, शक्तिकारूप कारणमें निजमें विनष्ट होते है,  
 इसी प्रकारके आपत्तिमें होय नहि शक्ते है, जिस हेतु श्त्पिण्ड  
 नष्ट होनेमेंहि शक्तिका कार्यान्तररूप सत्ता रहता है, इसी  
 वास्ते घटका श्त्पिण्डकारण है श्त्पिण्डका विनाश कारण  
 नहि है । सिद्धान्तरत्नम् इह सिद्धान्तस्व स्थिरीकृत भया ।  
 श्त्पिण्डका विनाशसेति घटका उत्पत्ति होना दृष्टान्त  
 दिखाकर सम्पूर्ण कारणका उत्पत्तिके पूर्वमें कारणका अस्तित्वा-  
 भाव अनुमान करना यौद्धान्तिका सम्पूर्ण रूपसे अयुक्त है ।  
 यौद्घ कहते है, श्त्पिण्डविनाश होनेसेहि शक्तिकारूप कारण  
 नष्ट नहि हो शक्ता है, जिस हेतु घटादिका कारणमें शक्तिका

व्यतिरेकेण मृदादेरसत्त्वादयुक्तमिति चेत् । पिण्डादि  
पूर्वकार्यीपमर्दे मृदादिकारणं नोपमृद्यते घटादि  
कार्यान्तरेऽप्यनुवर्तत इत्येतदयुक्तम् पिण्डघटादिव्यति-  
रेकेण मृदादिकारणस्यानुपलम्भादिति चेन्न । मृदादि-  
कारणानां घटादुत्पत्तौ पिण्डादिनिवृत्तावनुवृत्ति-  
दर्शनात् । सादृश्यादन्वयदर्शनं न कारणावृत्तेरिति

अनुवर्तनं वा विपरीतं देखनेमें आता है । इस प्रकारके सिद्धान्त  
तुमारा अयुक्त होता है । जिस हेतु उभि स्थानमें मृत्पिण्ड वा  
घटादिका अपेक्षाका अनन्य मृत्तिकाका उपलब्धि वा अनुभव नहि  
होता है , इसिवास्ते मृत्पिण्डका अभाव सेति घटका उत्पत्ति  
होता है कहना चाहिये । सिद्धान्तवादि जैन शिष्योंने कहते है ।  
वौद्धका इह वात कहनाभि युक्तियुक्त इहय, मृत्पिण्डका विनाश  
होनेसेभि उक्ता अययने मृत्तिकात्व रहता है , इसिवास्ते  
घटका उत्पत्तिकालमें मृत्तिकाका अनुवर्तन सर्व्व दाई रहता है ,  
इमिवास्ते मृत्तिकाहि घटका कारण है । मृत्पिण्डका अभाव  
कारण नहि इहय । अणिकवादि वौद्ध इस वातके प्रतिवादनमें  
कहते है, सम्पूर्ण पदार्थई अणकालस्थायी मृत्तिका वा अणिक,  
तिस्का अनुसारसे घटका उत्पत्तिका पूर्व्वमेंयो मृत्तिका वा घटका  
उत्पत्ति समयमें उक्ता सत्ता रहता नहि है । इसिवास्ते उक्ता  
सादृश्यात् दुसरा मृत्तिका घटमें अनुवृत्त वा युक्त होता है, सादृश्या  
हेतु उह मृत्तिकास्वरूप प्रतीति होता है, यथार्थ एक मृत्तिका

चेन्न । पिण्डादिगताना मृदाद्यखयवानामेव घटादौ  
 प्रत्यक्षत्वेऽनुमानाभासात् सादृश्यादि कल्पनानुप-  
 पत्तेः । न च प्रत्यक्षानुमानयोर्विरोधाव्यभिचारिता ।  
 प्रत्यक्षपूर्वकत्वादनुमानस्य सर्वत्रैवानाशवासप्रसङ्गात् ।

उहं नहि ह्य । सिद्धान्तवादि जैन शिष्योने कहते ह्य तुमारा  
 इह क्षणिकवादभि युक्तियुक्त नहि होता ह्य । मृतुपिण्डका  
 अवयवस्वरूप मृत्तिकाहि घटमे प्रत्यक्ष प्रतीयमान होता ह्य ।  
 इस प्रकारके स्थानोमे अनुमानाभास (सदोष अनुमान) के  
 मतनवसे उस्का क्षणिकत्व सिद्ध करके पूर्व दृष्टवस्तु कालान्तरमे  
 देखनेसे इह शोधि वस्तु इस प्रकारके ज्ञानको प्रत्यभिज्ञानाम  
 स्वरूप कहती है इस प्रकारके स्थानोमे सादृश्य प्रयुक्त अभेद  
 बुद्धि होना युक्तिसिद्धि ति उपपन्न होता नहि, जिस हेतु अनुमाना-  
 पेक्षसेति प्रत्यक्षप्रमाण वनमान होता है । प्रत्यक्ष कु मूलकरकेहि  
 अनुमानका प्रवृत्ति होता है । उभि अनमानसेति प्रत्यक्षभिद्ध  
 पदायकाभि अनुरूप कल्पना होने नहि शक्ता है, उह स्वीकार  
 करणसे समूह स्थानमेहि अप्रामाण्यका आशङ्का होय शक्ता है ।  
 प्रत्यभिज्ञा स्थानमे प्रत्यक्षसेति वस्तुका अभेदप्रतीति होता है । तुमारा  
 मतमे अनुमानसेति उस वस्तुका भेद स्वीकार करणसे प्रत्यक्ष वो  
 अनुमानका परस्पर विरोध होता है, इसिवास्ते प्रत्यक्षसेति  
 अनुमान बाधित होयगा अथवा अनुमानसेति प्रत्यक्ष बाधित  
 होयगा इह मतनवका प्रमाण नहि रहनेसे अनुमानहि प्रत्यक्षकु  
 म्याहत करेगा इस प्रकारके आपत्ति सङ्गत होने नहि शक्ता है ।

यदि च क्षणिक सर्व्वं तदेवेदमिति गम्यमान तद्बुद्धे-  
रपि अन्यतद्बुद्धापेक्षत्वे तस्या अप्यन्यबुद्धापेक्षत्व-  
मित्यनवस्थाया तत्सदृशमिदमित्यस्या अपि बुद्धेर्मृपा-  
त्वात् सर्व्वत्राणाश्वासतैव । तदिदम्बुद्धोरपि कर्त्ता-  
भावे सम्बन्धानुपपत्तिः । सादृश्यात् तत्सम्बन्ध  
इति चेन्न । तदिदम्बुद्धोरितरेतरविषयत्वानुपपत्तेः ।  
असति चेतरेतरविषयत्वे सादृश्यग्रहणानुपपत्तिः ।

जिस हेतु प्रत्यक्षहि अनुमानका मूल हय इसिवास्ते अनुमाना  
पेक्षसे प्रत्यक्ष प्रयत्न प्रमाण हय किस प्रकारसे अनुमाा कर्त्तृक  
प्रत्यक्ष बाधित होयगा ? अत्रर तुमारा मतमे सम्पूर्ण पदार्थहे  
क्षणिक, इसिवास्ते ज्ञानका प्रामाण्य निश्चय करनेके लिये अनर  
ज्ञानका अपेक्षा करना चाहिये । उसि ज्ञानका प्रामाण्य अवधारण  
करने कु अपरज्ञान अपेक्षित होयगा । इस्मेभि अनवस्था दोष  
युक्त होय शक्ता है इसि दोष प्रयुक्त ज्ञानका प्रामाण्य निश्चय होने  
नहि शक्ता है । इसिवास्ते तिसिका सदृश इह वस्तु इह ज्ञान  
कु मिथ्या कह शक्ते है , एयसहि सदृश बुद्धिसेति प्रत्यभिज्ञाका  
उपपत्ति करना सम्भव नहि हो शक्ता है । क्षणिकवादिका मते  
पूर्वज्ञान एव परज्ञानका एक स्थायी कर्त्ताका अभावप्रयुक्त प्रत्य-  
भिज्ञाका सम्भव नहि होता हय । सादृश्य वशमे अभेदबुद्धि  
होय, इह सिद्धान्तमि बुद्धिविद्बुद्ध , जिस हेतु सादृश्यबुद्धिसेभि  
एक पदार्थ देखकर अपर पदार्थकी तिष्ठा साम्य ज्ञान अपेक्षा  
करता है , इसिवास्ते भीहि ज्ञानक्षयका एक हि स्थायी विषयक

असत्येव सादृश्ये तद्वुद्धिरिति चेन्न । तदिदम्बुद्धो-  
रपि सादृश्यबुद्धिवदसद्विषयप्रसङ्गात् । असद्विषयत्व-  
मेव सर्व्वबुद्धिमस्त्विति चेन्न । बुद्धाबुद्धोरपासद्विषयत्व-  
प्रसङ्गात् । तदपास्त्विति चेन्न । सर्व्वबुद्धीना मृपात्वेऽ-  
सत्यबुद्धानुपपत्ते । तस्मादसदेतत् सादृश्यात् तद्-  
बुद्धिरित्यत सिद्धं प्राक्कार्योत्पत्ते कारणसङ्गाव  
कार्यस्य चाभिव्यक्तिलिङ्गत्वात् ॥ ३ ॥

कर्त्ता रहना आवश्यक । चणिक स्त्रीकार करनेसे, सादृश्य बुद्धिका  
सम्भव होता नहि, यो कही, सादृश्य नहि रहनेसे भि, सादृश्य  
बुद्धि होता है, सो होनेसे भि सो एहि, इह बुद्धिकाभि असद्विष-  
यता, मतलब विषय नहि रहनेसे भि ज्ञान होता हय, कह  
शक्ते है । यो इहइ इष्टापत्ति करो, तव तुमरा मतने  
समस्त ज्ञान हि मिथ्या होय गता है । कारण इह हय यो,  
ज्ञानका सत्यमिथ्या व्यवहारका मूलविषयका सत्ता असत्ता ।  
ययसा रज्जुमे रज्जुज्ञान सत्य, किन्तु उससे सपज्ञान  
मिथ्या । जिस् हेतु सपरूप विषय नहि रहना स्थानमे उह  
ज्ञान हुवा है । इसि प्रकार पूर्व्वदृष्ट वस्तुका अभावमे, मो एहि,  
एइ प्रकारका ज्ञान मिथ्या हि होयगा । इह प्रणालीसे सम्पूर्ण  
ज्ञान हि मिथ्या होनेसे उरुता सत्यता स्थापनके निमित्त प्रमाणातु-  
सरण करना चणिकवादिका हया प्रयास होता हय । उसि हेतु  
इह दूषित चणिकवाद सत्य था कहिये सम्पूर्ण स्थानमे अनादरेय  
हय, इमिशास्त्रे कार्योत्पत्तिका धूय मे कारणका अस्तित्व यो

- अभिव्यक्तिर्लिङ्गमस्येत्यभिव्यक्ति साक्षाद्विज्ञाना-  
लम्बनत्वप्राप्तिः । यद्वि लोके प्रावृत्त तम आदिना  
घटादि वस्तु तदालोकादिना प्रावरणतिरस्करणेन  
विज्ञानविषयत्वं प्राप्तवत् प्राक्सद्भावं न वाभिचरति ।  
तथेदमपि जगत् प्रागुत्पत्तेरित्यवगच्छाम । नहि  
अविद्यमानो घट उदितेऽप्यादित्य उपलभ्यते । न तेऽ-  
विद्यमानत्वाभावादुपलभ्यतैवेति चेत् । न हि तव  
घटादिकार्या कटाचिदप्यविद्यमानमित्युदितेऽप्यादित्य

पूर्वमे कहा गया हय, उह त्रिविरोधमे प्रमाण हुवा । एहि  
रीतिसे उत्पत्तिका पूर्वमे सूक्ष्मरूपमे कारणमे कार्यप्रका  
यिद्यमानता वो सिद्ध होता है ॥ ३ ॥

जिस हेतु कारण व्यापारसेति कार्यप्रका अभिव्यक्ति मावहि  
होता है, असत्का उत्पत्ति नहि होता है, जयसा अभ्यकारमे  
आहत घटादि पदार्थ प्रदीपादिका प्रभासे अभ्यकाररूप आवरण  
विनाश होनेमे, ज्ञानका विषय होता है, तैमाहि पूर्वमेभि विद्य-  
मान रहता है, उमि प्रकार उत्पत्तिका पूर्वमे सूक्ष्मरूपमे अथ  
स्थित एहि जगत् कारण व्यापारसेति आवरणका विनाश होनेमे  
अभिव्यक्ति वा ज्ञान लाभ करता हय, असत् पदार्थकभि अभिव्यक्त  
नाम प्रकाश होता नहि, जयसा अविद्यमान घट सूर्य उदित  
होनेमे भि उसि स्थानमे अभिव्यक्त वा प्रकाश होता हय नहि । यादि  
कहते है, तुमरा मतमे कार्योत्पत्तिका पूर्वमेभि विद्यमान रहते

उपलभ्येतैव । 'मृत्पिण्डे ऽसन्निहिते तम अविद्यावरणे  
 चासति विद्यमानत्वादितिचेत् । न द्विविधत्वादा  
 वरणस्य । घटादिकार्यास्य द्विविध ह्यावरण मृदा  
 देरभिवाक्तस्य तम कुडादिप्राड्मृदोऽभिवाक्तेर्मुदादा  
 वयवाना पिण्डादिकार्यान्तररूपेण मस्थानम् ।  
 तस्मात् प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानसैव घटादिकार्या  
 स्याद्वतत्वाद्नुपलब्धि । नष्टोत्पन्नभावाभावशब्दप्रत्यय

है, सूर्य उदित होनेसे विद्यमान घटका अथवा भावि घटकाभि  
 प्रत्यक्ष होना चाहिये वा होय । सिद्धान्तवादि जेन शिपरीने  
 कहते हैं, हमारा मतमें कार्यका आवरण दो प्रकार, मृत्पिण्डमेति  
 अभिव्यक्त घटादि सम्बन्धमें अन्यकार और प्राचीर प्रभृति आवरण  
 अभिव्यक्तिका पूर्वावस्थामें घटादि, अर्थात् मृत्पिण्डमें सूक्ष्मरूपमें  
 स्थित घटादिका सम्बन्ध, और कार्यरूपमें मृत्तिकावयवका स्थिति,  
 यथायं पूव कार्यवस्माहि परकार्यका आवरण । उचि हेतु  
 उत्पत्तिका पूर्वमें कार्य विद्यमान रहनेसेभि आहत रङ्गा प्रयुक्त  
 प्रत्यक्ष होता हय नहि । नष्ट, उत्पन्न, यो भाव, यो अभाव शब्दमें  
 तिसमें नाश, उत्पत्ति, विद्यमानता यो अविद्यमानता रूपमें यो  
 अयंप्रतीति वा विश्वास होता हय, उह केवल वस्तुका दीय प्रकार  
 का अभिव्यक्ति यो तिरोभाव हु अवलम्बन करले होता हय,  
 अर्थात् कपालादि खण्डसे ति घटका यो तिरोभाव, उस्का नाम नाश  
 पिण्डादि आवरण नहि रहनेसे घटका यो अभिव्यक्ति, उह उत्  
 पत्ति शब्दका अभिधेय वा नामवाचक कहने हय , प्रतीपादिसे ति

भेदस्त्वभिवाक्ति तिरोभावयोर्द्विविधत्वाच्चेप । पिण्ड-  
कपालादेरावरणवैलक्षण्याद्युक्तमिति चेत् । तम-  
कुब्जादिर्हि घटादरावरण घटादिभिन्नदेशं दृष्ट न  
तथा घटादिभिन्नदेशे दृष्टे पिण्डकपाले । तस्मात्  
पिण्डकपालसंस्थानयोर्विद्वान्मानस्यैव घटस्याहतत्वा-  
दनुपलब्धिरित्युक्तमावरणधर्मं वैलक्षण्यादितिचेत् ।  
न । क्षीरोदकादे क्षीरादरावरणेनैकदेशत्वदर्शनात् ।

अभ्यकाररूप आवरण नाश होनेसे घटका यो अभिव्यक्ति, सो  
भाव शब्दका अर्थ, घोर सृष्टिपण्डादिसेति तिरोभाव कु अभाव  
कहते हय । अभ्यकार वो प्राचीर प्रकृति घटका आवरण , किन्तु  
उह घट यो भूमिभागसे रहता है, सो म्यान घटका अधिकरण  
म्यान वटसेति प्राच्छादित रहनेसे अभ्यकार घटका उपर वो  
पार्ववर्ति भूभागसे रहता हय । इमिवास्ते घट वो अभ्यकार  
एक अधिकरण नहि होता हय, प्राचीरादि वो भिन्न भिन्न भूभाग  
अधिकरणविगैपरूप स्वरूपमेहि लक्षित होता हय , इमिवास्ते  
अभ्यकार वो प्राचीरादि आवरणके सहित घटका एक अधिकरण  
का सत्ता नाम स्थायी नहि हय । यो कहो सृष्टिपण्ड घटका  
आवरण होय, सो होनेसे उस्काभि अधिकरण पृथक् होता ।  
किन्तु घट सृष्टिपण्डका एक अधिकरणमेहि दृष्ट होता है एहि  
प्रमेदता हेतु सृष्टिपण्ड घटका आवरण नहि हय । इस प्रकारके  
कुतक नगयानुगत कहने स्वीकार कीया नहि याता है ।



उपलभ्येतेव । मृत्पिण्डेऽसन्निकृति तम अविद्यावरणे  
 चासति विद्यमानत्वादितिचेत् । न द्विविधत्वादा  
 वरणस्य । घटादिकार्यस्य द्विविध द्वावरण मृदा  
 देरभिव्यक्तस्य तम कुड्यादिप्राङ्मृदोऽभिव्यक्ते मृदादा  
 वयवाना पिण्डादिकार्यान्तररूपेण सम्यानम् ।  
 तस्मात् प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानसौव घटादिकार्या  
 स्याद्वतत्वाद्नुपलब्धि । नष्टोत्पन्नभाषाभावशब्दप्रत्यय

हे, सत्य उदित होनेसे विद्यमान घटका अथवा भावि घटकाभि  
 प्रत्यय होना चाहिये वा होय । मिहान्तवादि जेण शिपणेने  
 कहते हे, हमारा मतमें कार्यका आवरण दो प्रकार, मृत्पिण्डमेति  
 अभिव्यक्त घटादि सम्बन्धमें अन्यकार और प्राचीर प्रभृति आवरण,  
 अभिव्यक्तिका पूयायम्यामे घटादि, अर्थात् मृत्पिण्डमें मृदमरूपमें  
 स्थित घटादिका सम्बन्ध, और काय्यरूपमें मृत्तिकावयवका स्थिति,  
 यथाय पूर्व कार्यायम्याहि परकार्यका आवरण । उभि हेतु  
 उत्पत्तिका पूर्वमें कार्य विद्यमान रहनेसेभि चाहत रहना प्रयुक्त  
 प्रत्यक्ष होता है नहि । नष्ट, उत्पत्त, दो भाव, दो अभाव शब्दमें  
 तिमो नाश, उत्पत्ति, विद्यमानता दो अविद्यमानता रूपमें यो  
 अथप्रतीति वा विश्वास होता है, उह केवल यमुका दीय प्रकार  
 का अभिव्यक्ति यो तिरोभाव सु अयलम्बन करके होता है,  
 अथात् कपालादि खण्डमें ति घटका यो तिरोभाव, उम्का नाम नाश,  
 पिण्डादि आवरण नहि रहनेसे घटका यो अभिव्यक्ति, उह उत्  
 पत्ति शब्दका अभिधेय वा नामवाचक कहने है प्रदीपादिमें ति

भेदस्त्वभिवाक्तितिरोभावयोर्द्विविधत्वात्तत्रापि । पिण्ड-  
कपालादेरावरणवैलक्षण्याद्युक्तमिति चेत् । तम-  
कुड्यादिर्हि घटाद्यावरणं घटादिभिन्नदेशे दृष्टं न  
तथा घटादिभिन्नदेशे दृष्टे पिण्डकपाले । तस्मात्  
पिण्डकपालसंस्थानयोर्विद्यमानस्यैव घटस्यावृत्तत्वा-  
दनुपलब्धिरित्ययुक्तमावरणधर्मवैलक्षण्यादितिचेत् ।  
न । जीरोदकादे जीराद्यावरणेनैकदेशत्वदर्शनात् ।

अन्धकाररूप आवरण नाय होनेसे घटका यो अभिव्यक्ति, सो  
भाव शब्दका अर्थ, प्रौर मृत्पिण्डादिमेति तिरोभाव कु अभाव  
कहते हैय । अन्धकार वो प्राचीर प्रभृति घटका आवरण , किन्तु  
उह घट यो भूमिभागमे रहता है, सो स्थान घटका अधिकरण  
स्थान घटसे ति आच्छादित रहनेसे अन्धकार घटका उपर वो  
पार्श्ववर्ति भूभागमे रहता हैय । इसिवास्ते घट वो अन्धकार  
एक अधिकरण नहि होता हैय, प्राचीरादि वो भिन्न भिन्न भूभाग  
अधिकरणविशेषरूप स्पष्टरूपमेहि लक्षित होता हैय , इसिवास्ते  
अन्धकार वो प्राचीरादि आवरणके सहित घटका एक अधिकरण  
का सत्ता नाम स्थायी नहि हैय । यो कही मृत्पिण्ड घटका  
आवरण होय, सो होनेसे उक्ताभि अधिकरण पृथक् होता ।  
किन्तु घट मृत्पिण्डका एक अधिकरणमेहि दृष्ट होता है यहि  
प्रभेदता हेतु मृत्पिण्ड घटका आवरण नहि हैय । इस प्रकारके  
कुगक नशयानुगत करके स्वीकार कीया नहि याता है ।

घटादिकार्या कपालचूणादावयवानामन्तर्भावाद्ना  
 वरणत्वेमिति चेत् । न । विभक्ताना कार्यान्तरत्वादा-  
 वरणत्वोपपत्तेरावरणाभाव एव यत्र कर्त्तव्य इति चेत्  
 पिण्डकपालावस्थयोर्विद्यमानमेव घटादिकार्यमा  
 वृतत्वान्नोपलभाते इति चेत् । घटादिकार्यार्थिना  
 तदावरणविनाश एव यत्र कर्त्तव्यो न घटादुत्पत्तौ ।  
 न चैतदस्ति तस्माद्युक्तं विद्यमानस्यैवावृतत्वाद्नु-  
 पलब्धिरिति चेत् । न अनियमात् । न हि विनाश-

जिस हेतु आहत दो आवरणका भिन्न अधिकरण होयगा,  
 उह विषयका कोदभि प्रमाण नहि हय । घर जलका आवरण  
 दुधमे, इस्का व्यभिचारताहि देखनेमे आता ऐ । एक घटमे  
 जल मयुक्त दुग्ध संकरो देखनेमे आता ऐ, घटादि कार्यका अभि  
 व्यक्तिका वस्तुतमे कपालान्तिक अवयव घटमे प्रत्यक्ष दिग्वाद् आता  
 ऐ, उह घटका आवरण, उह आवरण यो आहतका एक समयमे  
 प्रत्यक्ष होना सवथाहि असम्भव हय, इसि प्रकारका आपत्तिभि  
 ताहि होय गणा ह । जिस हेतु घटसेति पृथक् प्रतीयमान  
 घटका अवयवहि घटका आवरण, घटका महित मिनितावग्यामे  
 उस्का आवरणता नहि हय, उह अभिव्यक्ति घटका अवाधित  
 प्रत्यक्ष निरुत्तरके कल्पना मिह भया है । यदि कहते ह, यदि  
 उत्पत्तिका पूर्वमेभि घट विद्यमान रहे, केवन गत्पिण्ड वा कपा  
 लादिसेति आहत रहे ता प्रयुक्त उस्का उपलब्धि होता ताहि हय,

मात्रप्रयत्नदेव घटाद्यभिव्यक्तिर्नियतातम आद्यावृत्ते  
 घटादौ प्रदीपादुत्पत्तौ प्रयत्नदर्शनात् । सोऽपि तमो-  
 नाशायैवेति चेत् दीपादुत्पत्तावपि य प्रयत्न सोऽपि  
 तमस्तिरस्कारणाय । तस्मिन्नष्टे घटः स्वयमेवोपलभाते ।  
 न हि घटे किञ्चिदाधीयत इति चेत् । न प्रकाश-  
 वतो घटस्योपलभात्मानत्वात् । यथा प्रकाशविशिष्टो  
 घट उपलभाते प्रदीपकरणे । न तथा प्राक् प्रदीप-  
 करणात् । तस्मात् न तमस्तिरस्कारणैव प्रदीप-  
 करणम् । किं तर्हि प्रकाशवत्त्वाय । प्रकाशवत्त्वे नैवो-  
 पलभात्मानत्वात् ॥ ४ ॥

एहि सिद्धान्तसि स्थितीकृत हुया, तत्र घटार्थिपुरुष आवरण नाशका  
 यत्न नहि करके घटका उत्पत्तिके निमित्त काहे यत्न करते हे ?  
 जिस हेतु इह प्रकारके लोकव्यवहार देखनेमे आता है, उमिवास्ते  
 उत्पन्न मानने होयगा, यो उत्पत्तिका पूर्वमे आहत रूपमे घट  
 विद्यमान नहि था, अविद्यमान घटकाहि उत्पत्ति होता हय ।  
 इस्का उत्तरमे सिद्धान्तवादि जैन शिष्योने कहते है, आहत वस्तुका  
 अभिव्यक्तिके निमित्त केवल आवरण विनाशकेवास्ते हि यत्न  
 करने होयगा इस प्रकारके कोइ नियम नहि हय, अन्यकाराहत  
 घटका अभिव्यक्तिके निमित्त जुना हुया प्रदीपमेति अन्यकारका  
 नाश यो घटका प्रकाशरूप होय टी फल देखनेमे आता है, केवल  
 नाशक विनाशकेवास्ते प्रदीप जुनाया नहि याता है ॥ ४ ॥

क्वचिदावरणविनाशेऽपि यत्नः स्यात् यथा कुड्यादिविनाशे तस्मात्तन् नियमोऽस्ति अभिव्यक्तार्थिनावरणविनाश एव यत्नः कार्य्य इति । नियमार्थवत्त्वाच्च । कारणे वर्तमानं कार्य्यं कार्य्यान्तराणामावरणमित्यवोचाम । तत्र यदि पूर्वाभिव्यक्तस्य कार्य्यस्य पिण्डस्य व्यवहितस्य वा कपालस्य विनाश एव यत्नः क्रियेत । तदा विदलचूर्णाद्यपि कार्य्यं जायेत । तेनापाहतो घटो नोपलभ्यत इति पुनः प्रयत्नान्तरापेक्षैव । तस्माद् घटाद्यभिव्यक्तार्थिनी नियत एव कारक

कोऽस्य स्थानमेवावरणनाशके निमित्तमेभि यत्नः क्रियायाता है, जयसा प्राचीराहत घटका अभिव्यक्तिका निमित्त प्राचीर तोडनी कु यत्न क्रिया जाता है । उसिवास्ते कहते है, केवल आवरण भङ्गका निमित्तइ यो यत्न करने होयगा, अयसा नियम महि हय । कहा हुया है, अभिव्यक्त कार्य्य अनभिव्यक्त कार्य्यका आवरण । इमि हेतु घटका अभिव्यक्तिका निमित्त सृष्टिण्ड या कपालका विनाश निमित्त इह सिद्धान्त करनेसे सृष्टिण्ड या कपालका विनाशमे चूर्णरूप कार्य्यान्तरमि उपजने शक्ते हय । वोक्ति कार्य्यमेति आहत रहनेसे घटका उपलब्धि होने शक्ता नहि, इसि वास्ते घटका अभिव्यक्ति निमित्त दण्डचक्रादिरूपकारक सम्पूर्ण का व्यापार हरदम् अपेक्षित हुया है और मि घटका अभिव्यक्ति काय सम्पादन करने कारकका व्यापार मि मायकता लाभ

व्यापानोऽर्धवान् । तस्मात् प्रागुत्पत्तेरपि सदेव कार्य्य  
 अतीतानागतप्रत्ययभेदाच्च । अतीतो घटोऽनागतो घट  
 इत्येतयोश्च प्रताययोर्वर्त्तमानघटप्रत्ययवन्न निर्व्विषय-  
 यत्वं युक्तम् । अनागतार्थिप्रवृत्तेश्च । न ह्यसत्यर्थितया  
 प्रवृत्तिर्लोके दृष्टा । योगिना चातीतानागतज्ञानस्य  
 सत्यत्वादसशेद्विषयघटोऽप्येवमभिव्यक्तविषय प्रत्यक्ष  
 ज्ञान सिद्ध्या स्यात् । न च प्रत्यक्षमुपचर्य्यते ।  
 घटसद्भावेऽनुमानमवोचाम । विप्रतिषेधाच्च ॥ ५ ॥

करते ह्यय । इह सम्पूर्णं युक्तिमेति उत्पत्तिका पूर्व्वमे कार्य्यका  
 विद्यमान रहना सिदान्तहि स्थिर हुया । घट हीता हे , एहि  
 वर्त्तमान घट विषयक ज्ञानका नयाय घट होयगा वो घट हुयाया,  
 एहि प्रकार भविष्यत वो अतीत घट विषयक ज्ञान, विषयके  
 महित प्रकाश पाता है । यदि अतीत वो भविष्यत अवस्थामे  
 वस्तु नहि रहे, तव वर्त्तमान अवस्थाका नयाय विषयका अवभास  
 हीता नहि । एहि युक्तिमेति उत्पत्तिका पूर्व्वमे कार्य्यका मत्ता  
 प्रमाणित हीता है । यो कही भविष्यत अवस्थामे वस्तु नहि रहे,  
 तव आकाशकुसुमका आङ्गणका नयाय घटकेवास्तीभि कोई  
 पुरुष प्रयत्न करता नहि । यो वस्तु भावि घटकावास्ती लोकका  
 पक्षति देखनेमे आता है, तव मानने होयगा यो, भावि घटभि  
 अनभिव्यक्तरूपमे विद्यमान रहता है । यो कही भविष्यत घट  
 असत्स्वरूप होय, तव ईश्वर वो योगिगणका कोई घट विषयक

यदि घटो भविष्यतीति कुलान्नादिषु व्याप्रिय  
 माणेषु घटार्थं प्रमाणेन निश्चितम् । येन च कालेन  
 घटस्य सम्बन्धी भविष्यतीति तु च्यते तस्मिन्नेव काले घटी-  
 ऽसन्निति । विप्रतिपिद्धमभिधीयते । भविष्यान् घटोऽ-  
 सन्निति न भविष्यतीत्यर्थः । यत्र घटो न वर्त्तत इति  
 यद्वत् । अथ प्रागुत्पत्तेर्घटोऽसन्नितु च्येत घटार्थं  
 प्रवृत्तेषु कुलालादिषु तत्र यथाव्यापाररूपेण वर्त्त-  
 मानाम्नावत् कुलालादयस्तथा घटो न वर्त्तत इत्य-

प्रत्यक्षज्ञानमि मिथ्या होय गने । योगी वो इश्वरका ज्ञानकु  
 मिथ्या कहा नहि जाय गता है । जिम हेतु बोद्धि पान सिवाय  
 दुमरा प्रबल ज्ञान नहि हय, जिमसेति उह वाधित होयगा ॥ ५ ॥

यो कहो, अतीत यो भविष्यत कालमे अमत् वस्तु विषयक  
 भावमे योग प्रभावमे इश्वर वो योगीका मत्वज्ञान उत्पन्न होता हय,  
 तत्र इह कहा हुया युक्तिमेति अतीत यो भविष्यत अस्थामिभि  
 वस्तुका विद्यमानता अनुमित हयगा अथसाहि कहेगे । ( ओहि  
 अनुमान प्रदर्शन करत हय । ) कुम्भकार प्रभृति कारक सम्भूत  
 कु व्यापृत देखकर घट होयगा, अथमा निश्चय सर्वसाधारणका  
 होता हय । घट होयगा, इह यावत् भविष्यत कालका  
 सहित घटका सम्बन्ध कथित होता हय । उमि कालमे घटका  
 मत्ता नहि हय इह वात समूह अमत् जयमा यत्मान  
 घटु विद्यमान वाक्य

सञ्चन्द्रस्यार्थश्चेन्न विरुध्यते कस्मात् स्वेन हि भविष्य-  
द्रूपेण घटो वर्तते ? न हि पिण्डस्य वर्तमानता  
कपालस्य वा घटस्य भवति । न च तयोर्भविष्यत्ता  
घटस्य । तस्मात् कुलालादिव्यापारवर्तमानताया  
प्रागुत्पत्तेर्घटोऽसन्निति न विरुध्यते । यदि घटस्य यत्-  
सम्भविष्यत्ता कार्यरूप तत्प्रतिषिध्येत तत्प्रतिषेधे  
विरोधः स्यात् । न तु तद्वान् प्रतिषेधति ॥ ६ ॥

इयं, उक्तिप्रकार, यो घट होयगा, सो भविष्यत् कालमें असत्,  
इह वातमि सङ्गत नहि इयं । वादि बौद्ध कहते इयं, घट निर्माण  
के निमित्त जिस् प्रकार कुलालादिका व्यापार दिखाई आता इयं,  
उत्पत्तिका पूर्वमें घट उक्तिप्रकार, अर्थात् स्वप्रयोजनसाधन-  
क्षमरूपमें विद्यमान नहि रहनेई असत् शब्दका अर्थ इयं, ईहई  
कहेगे । सिदान्तवादी जैन कहते इयं । तुम जिहा प्रकारसे  
असत् शब्दका अर्थ करते हो, उह हमारे मतमें विरुद्ध नहि  
इयं । जिम हेतु उत्पत्तिका पूर्वमें घट अनभिव्यक्त अवस्थामें  
रहते इयं, इतिवास्ते उक्ति अस्थामें प्रयोजनसाधनकु सक्षम  
होता नहि इयं, भविष्यद्रूपमें रहता इयं । तत्कालमें सृत्तिका  
वा कपालका वर्तमानता रहनेमें भि ओहि वर्तमानता घटका  
होता इयं नहि, इति प्रकार घटका भविष्यत्ताभि उह लोणक  
होता इयं नहि । तुम घटका उत्पत्तिका पूर्वमें भविष्यत्ता  
स्वीकार नहि करनेमें तुमारे सहित हमारा मतका विरोध  
होता । तुम उह स्वीकार करनेमें मतभेद भया नहि ॥ ६ ॥



न च सर्वेषां क्रियावतामेकैव वर्तमानता भवि-  
 पात्व वा अपि च चतुर्विधानामभावानां घटस्येतर-  
 तराभावो घटादन्यो दृष्टो यथा घटाभावः पटादि-  
 न घटस्वरूपमेव । न च घटाभावः सन् पटोऽभावा-  
 त्मकः किन्तुर्हि भावरूप एव । एव घटस्य प्राक्-  
 प्रध्वः सात्यन्ताभावानामपि घटादन्यत्वः स्यात् । घटेन  
 व्यदिश्यमानत्वात् घटस्येतरतराभाववत् । तथैव  
 भावात्मकता अभवानाम् एवञ्च सति घटस्य प्राग्भावा-

सम्पूर्ण क्रियावान् पदार्थकादि भविष्यता, वर्तमानता वी-  
 प्रतीतत्व विभिन्न, एक नहि ह्य, जिम् हेतु घटका विद्यमानता  
 समयमे घटका भविष्यता देखनेमे आता है, विद्यमानता देखने  
 मे नहि आता है, इतिवास्ते उह व्यक्तिभेदमे विभिन्नदि-  
 मानने होयगा । घटादि कार्य उत्पत्तिका पूर्व मे एय विनाशका  
 परमि असत् नहि ह्य । इह विद्यमाने औरमि युक्ति दिया जाता  
 है । अभाव चार प्रकार, प्राक्भाव ( उत्पत्तिका पूर्वकालीन  
 भाव ) ध्वंस ( विनाश ) अत्यन्ताभाव ( सम्बन्धीनाभाव )  
 वी अनगोचराभाव ( भेद ) इह चार प्रकारके अभावके विचमे  
 ( अनगोचराभाव ) अथात् घटका अनप पट, इह स्थानमे पटमे  
 घटका यो भेद प्रतीत होय, उह पटस्वरूप, भाव पदार्थ, घट  
 स्वरूप नहि ह्य, इमि प्रकार घटका प्राक्भाव प्रध्वंस वी अत्यन्ता-  
 भाव वी भावपदाय, घटकास्वरूप नहि ह्य । जिम् हेतु घटका  
 प्राक्भाव कहनेमे वा इह वात कहनेसे घट वी प्राक्भाव इह

इति न घटस्वरूपमेव प्रागुत्पत्तेर्नास्ति । अथ घटस्य प्राग्भाव इति घटस्य यत् स्वरूपं तदेवोच्यते । घटस्येति व्यपदेशानुपपत्तिः । अथ कल्पयित्वा वापदिश्येत शिलापुत्रकस्य शरीरमिति यद्वत् । तथापि घटस्य प्राग्भाव इति कल्पितस्यैवाभावात् घटेन वापदेशो न घटस्वरूपस्यैव ॥ ७ ॥

दोनोका एक सम्बन्ध प्रतीति होता हय रुम्बन्ध व्यक्ति दोईने रहता हय , इमिवास्तो घट वो उक्ता प्राग्भाव एक पदार्थ होने नहि गता हय, जयसा चेतका पुत्र अयसा वात कहनेसे, चेत वो पुत्रका एकठो सम्बन्ध ज्ञान होकर विभिन्नताका प्रतीति होता हय, घट उसिका प्राग्भावस्वरूप कहनेसे उक्तरूप सम्बन्ध प्रतीति होता नहि । यो कहो शिलापुत्रका शरीर, इमि प्रकार प्रयोग करनेसे, शिलापुत्र वो शरीरका भेद नहि रहनेसेभि, कम्पना करके भेद व्यवहार होता हय, उसि प्रकार घटका प्राग्भाव, इह व्यवहारभि फाल्पनिक भेदकु अयनम्बन करकु होयगा, उह होनेसे कल्पित भावकाहि घटका सहित सम्बन्ध व्यवहृत होता हय । इह वात माने होयगा । सत्यहि घट अभावस्वरूप नहि हय, घटका प्राग्भाव अभिव्यक्तावस्य घटमेति भिन्न पदार्थ, निश्चय भया । इह वस्तुत्मे इह विचारणा यो, घटका प्राग्भाव अनयोनाय भावका नयाय प्रतिगय विभिन्न, कथा सूक्ष्मरूपमे कारण विन्नीन घटस्वरूप ? बहुत भेद स्वीकार करनेसे घटका कारण शृङ्खलित व्यतिरिक्त काठ पापाणादि यो कोई पदार्थमेभि घटका प्राग्भाव रहने गता हय, इष्टापत्ति करनेसे उसिसे घटोत्पत्तिका प्रसङ्ग

अथार्थान्तरं घटादवटस्याभाव इत्युक्तोत्तरमेतत् ।  
 किञ्चानात् प्रागुत्पत्तेः शशविपाणवदभावभूतस्य  
 घटस्य स्वकारणसत्तासम्बन्धानुपपत्तिः । द्विनिष्ठत्वात्  
 सम्बन्धसप्रायुतसिद्धानामदोष इति चेत् । न । भावा-  
 भावयोरयुतसिद्धत्वानुपपत्तेः । भावभूतयोर्हित्युतसिद्ध-  
 तायुतसिद्धता वा साऽन्नतु भावाभावयोरभावयोर्वा  
 तस्मात् सदेव कार्यं प्रागुत्पत्तेरिति सिद्धम् ।

होता ह्य, जिस हेतु प्राग्भाव रहनेसे अथवा अहि काय्योत्पत्ति  
 होनेका नियम ह्य । द्वितीय कल्प स्वीकार करनेसे अथवा अहि  
 मत सत्कार्यवादहि निर्बिरोधने तुमाराभि स्वीकार हुआ ॥ ७ ॥

सत्कार्यवाद भोरभि युक्त होयगा, यो कहो उत्पत्तिका पूर्वमे  
 घट अभावस्वरूप होय, सो होनेसे यो प्रकार गगककाय्य अथवा  
 पदार्थ हेतु कोइ पदायमेभि सयुक्त होता नहि ह्य इति प्रकार  
 असत् घटभि स्वकारण मृत्पिण्ड वा कपानका सहित सम्बन्ध  
 होय नहि यत्ना ह्य, जिस हेतु सम्बन्ध दीय सत्पदार्थमे रहता  
 है । असत्पदार्थमे रहता नहि ह्य । यो कहो, सयोगसम्बन्धका  
 प्रति इह नियम ह्य, समवायसम्बन्धका प्रति इह नियम नहि  
 ह्य । इह पात असह्यत । जिस हेतु भाव यो अभाव, समवाय  
 सम्बन्ध, समवायवादिका मतमे स्वीकार भया ह्य नहि, भाव  
 पदाय दोनोमे सयोगके नयाय समवायसम्बन्ध मानना हुआ ह्य,  
 भावाभावमे किम्वा अभाव दोनोमे उह रहता नहि ह्य, तुमारा  
 मतमे कारणका सहित काय्यका समवाय सम्बन्ध साऽत्ता हुआ ह्य,  
 इतिवास्ती श्रीहि अनुरोधमे सत्कार्यवाद तुमारा मतमेभि

‘सदेव सौम्येति श्रुत्युक्तस्य सृष्टात्वेन ब्रह्मणः शून्य-  
भावापत्ते असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत् ।  
अस्ति ब्रह्मेति चेद्देद सन्तमेनं ततो विदु”रित्यत्रा-  
सद्वादिन निन्दित्वा सद्वादी प्रस्तूयति तच्च पौष्टेत् ।  
येन जीवाजीवादीनष्टपदार्थान् सत्त्वासत्त्वादिविरुद्ध-  
धर्मयोगिनः वर्णयन्ति कथञ्चित् सत् कथञ्चिदसत्  
कथञ्चित् सदसदित्येवमादिना सप्तभङ्गीनायकेन ॥ ८ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे

सत्कार्यवादानामा प्रथमः पादः ॥

सिद्ध होता है । ईं सौम्य सृष्टिके पूर्व मेभि इय जगत् वर्त्तमान  
था, इत्यादि वेदकि उक्ति मिथ्या हीनके सब्बसे जगतका सत्त्वे कि  
अभावसे शून्यभाव मालुम पड़ता है । आशोर पृथिवी वर्त्तमान  
नहि था इत्यादि वेदवाक्यके अनुसरण करनेवाले असद्वादिका निन्दा  
करके मनुादि यो मत प्रकाश करते है उयभि सम्पूर्ण नष्ट ही  
याता है । इसलोक अर्थात् जैनशिप्रवर्ग, सत्तासत्तादि विरुद्ध धर्म  
जीव आशोर अजीवादि अष्ट पदार्थका वर्णना करते रहते है । उन  
लोक धोलते है कि कुछ सत् आशोर कुछ असत् प्रभृति सप्तभङ्गी  
नायके सहायतासे अष्ट पदार्थका प्रमाण किया जाता है ॥ ८ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे सत्कार्य-

वादानामक प्रथम पादः ।

## द्वितीय पाद ।

इदानीं बुद्धमत निराक्रियते । तत्र बुद्धमुनेर्वै  
 भाषिक सौत्रान्तिक योगाचारमाध्यमिकाख्याश्चत्वारः  
 शिष्याः । तेषु वाङ्मय सर्वोऽप्यर्थं प्रत्यक्ष इति वैभा-  
 षिकः । बुद्धिवैचित्र्यादर्शोऽनुमेय इति सौत्रान्तिकः ।  
 अर्थशून्य विज्ञानमेव परमार्थसत् वाङ्मयस्तु, स्वप्न-  
 तुल्य इति योगाचारः । सर्वं शून्यमिति माध्य-  
 मिक इत्येवं ते मतानि दधुः । भावपदार्थं सर्वत्र  
 क्षणिकं । तत्रादौ भूतभौतिकश्चित्तचैत्यश्चेति समु-  
 दायद्वयं मन्यते । तथाहि रूपविज्ञानवेदनासञ्ज्ञासंस्कारा-  
 राख्या पञ्च स्कन्धा भवन्ति । तेषु खरस्नेहोष्णाचलन-

तिस्रः पादौ बुद्ध मत निराकरणं होता है । बुद्धमुनिका  
 चार शिष्याः,—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार यो माध्यमिकः ।  
 वैभाषिकका मतमे वाङ्मयसु मात्रहि प्रत्यक्षः । सौत्रान्तिकके  
 मतमे वस्तुमात्रहि बुद्धिका वैचित्र्येति अनुमेयः । योगाचारका  
 मतमे वस्तुमात्रहि असत् । विज्ञानहि एकमात्र परमायभूत  
 सत्त्वसु । वाङ्मय वस्तु सम्पूर्णं स्वप्नका अयसा मिथ्या । माध्य-  
 मिकका मतमे सम्पूर्णहि शून्यः । बुद्धसम्प्रदायका अयसाहि  
 मत इय, भाव पदार्थहि क्षणिक तिस्रके विचमे भूतभौतिक  
 यो चित्तचैत्य, एहि दोनो (समुदायः) । स्वीकृत होते इय ।  
 उक्त मतमे, रूप, विज्ञान, वेदना, मज्ञा, यो संस्कार एहि पाचठो

स्वभावा. पार्थिवाद्यश्चतुर्विधा. परमाणवः पृथिव्यादि-  
भूतचतुष्टयरूपेण सहन्यन्ते । तच्च चतुष्टयञ्च देहे-  
न्द्रियविषयरूपेणेति स एष भूतभौतिकात्मरूप-  
स्कन्धो वाह्यसमुदायः । अहंप्रत्ययसमारूढो ज्ञान-  
सन्तानो विज्ञानस्कन्धः । स एष कर्त्ता भोक्ता चात्मा ।  
सुखवेदना दुःखवेदना च वेदनास्कन्धः । देवदत्तादि-  
नामधेय सञ्ज्ञास्कन्धः । रागद्वेषमोहादियैतसिको-  
धर्म सस्कारस्कन्धः । त एते चत्वारः स्कन्धाश्चित्त-  
चैत्तिका. कथ्यन्ते । सर्व्वव्यवहारास्पदत्वेन चान्तः  
सहन्यन्ते । तदयमान्तर. समुदायश्चतुस्कन्धरूपः ।  
इदमेव समुदायद्वयमशेषं जगत् । एतदन्यदाकाशा-

स्कन्धः । खरस्वभाव, ओहस्वभाव, उष्णस्वभाव यो चमनस्वभाव  
एहि चार प्रकार पार्थिवादि परमाणु सम्पूर्णहि पृथिव्यादि भूत  
चारीरूपमे परिणत होता ह्य । उक्त भूतचारीहि फेर देह  
इन्द्रिय वो विषयरूपमे प्रकाश होता ह्य । रूपस्कन्ध, भूत  
भौतिकात्मक वाह्यवस्तु । अह प्रत्यय, ममारूढ ज्ञान समूहहि  
विज्ञानस्कन्ध । आत्मा कर्त्ता वो भोक्ता सुखवेदना वो दुःख  
वेदनाहि वेदनास्कन्ध । देवदत्तादिमज्ञाहि सज्ञास्कन्ध । राग, द्वेष  
वो मोह प्रभृति चित्तका धर्महि सस्कारस्कन्ध । एहि चारीहि  
स्कन्धका साधारण नाम चित्तचैत्तिक । सम्पूर्ण व्यवहारका  
आस्पदरूपमे उक्त सब अन्तरमे मिनित होता ह्य । इसवास्ति  
एहि आन्तर समुदाय हि चतु स्कन्धरूप । उक्त समुदायद्वयहि

दिकमवस्तुभूतमिति । अत्र सशयः । एषा समुदाय-  
द्वयकल्पना युक्ता न वेति । एतेनैव जगद्भावहारो-  
पपक्षैर्युक्तेति प्राप्ते प्रतिविधत्ते ॥ १ ॥

योऽयमुभयसंघातहेतुक उभयविध समुदायो  
निरूपितस्तस्मिन् स्वीकृतेऽपि तदप्राप्तिर्जगदात्मक-  
समुदायासिद्धिः । समुदायिनामचेतनत्वादन्वयस्य च  
सहन्तु स्थिरचेतनस्याभावात् । स च भावघणिक  
त्वाङ्गीकारात् । सूत प्रवृत्तुरीकृतौ तत्सातत्यप्रसङ्गः ।  
तस्माद्युक्ता तत्कल्पना ॥ २ ॥

लेकर अयेप जगत् । एतद्विषय आकाशादि पदार्थ अवस्तुभूत ।  
इह स्थानमे सशय एहि । उक्त समुदायद्वयका कल्पनायुक्त यथा  
अयुक्त ? इहमेति जगद्भावहारका उपपत्ति अयुक्त उक्त  
कल्पना युक्तहि होता हय इमि प्रकार पूर्वपक्षका खण्डनाय  
भगवन्त प्रतापचन्द्र प्रभृतिगणोने प्रमेय कमल भास एडादि प्रवच्यमे  
कहने हय ॥ १ ॥

इह यो उभय संघातहेतुक उभयविध समुदाय निरूपित  
हुवा है, तत्स्वीकारमेभि तिक्ता अप्राप्ति अर्थात् जगदात्मक समु-  
दायका असिद्धि होता है । समुदायहि सम्पूर्णका अचेतनत्व  
एवं तदनु स्थिर चेतन संघातका अभाव प्रयुक्तहि अोहि  
दोष घटता है । जिस् हेतु उक्त मतमे सब्य वहि भाव घणिक  
अङ्गीकृत हुवा हय । सूत प्रवृत्तिका स्वीकारमेभि तत्सातत्यप्रसङ्ग  
होता हय । इस वाम्ने तत्कल्पना अयुक्तहि होता हय ॥ २ ॥

ननु सौगतसमये विद्यादयोभिधो हेतुफल-  
भावभाषणा स्वीक्रियन्ते अप्रत्याखियाश्च ते सर्वेषां  
तेषु च मिथस्तयाभावेन घटीयन्त्ववत् सन्ततमावर्त्त-  
मानेष्वर्थादिना सङ्घातस्तमन्तरैर्गोषामसिद्धे । ते  
चाविद्यासंस्कारो विज्ञान नाम रूप पडायतन स्पर्शी  
वेदना तृणोपादान भवो जातिर्जरा मरण शोक परि-  
देवना दुःख दुर्मनसा चेति तत्राह । अविद्यादीनां  
परस्परहेतुत्वादुपपन्नसङ्घात इति यदुक्तं तन्न । कुत  
उपपत्तीति । तेषां पूर्वपूर्वमुत्तरोत्तरस्योत्पत्ति-

यो कश्चि भौगत समयमे अथात् दौहमतमे अविद्यादि पदार्थ  
सम्पूर्ण परस्पर हेतुभाव वो फलभाव प्राप्त होता है, इम्  
प्रकार स्वीकृत होते है । उह सम्पूर्णकाहि अप्रत्यक्षहि होता  
है । जिस हेतु उह लोके परस्पर हेतु फल भावमेति घटी  
यन्त्ववत् सन्तत आवर्त्तमान् शोहि सम्पूर्ण पदार्थका सघात  
अयमेति आशयित होता है । सघात विना अविद्या प्रभृतिका  
अभिधि होता है । अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप,  
पडायता, स्पर्श, वेदना, तृणा, उपादान, भव, भव, जाति, जरा,  
मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दुर्मनसा, इह सम्पूर्णकाहि नाम  
सघात । तद्विषयमे कहते है अविद्यादिका परस्परहेतुत्व प्रयुक्त  
सघात उपपन्नहि होता है । इस प्रकार यो कुछ कहा जाता  
है, उह महत हीना है नहि । कारण, उह लोका पूर्वपूर्व  
उत्तरोत्तर उत्पत्ति मात्रदिका कारण होता है, किन्तु



कार्यं तर्हि यौगपदा कार्यकारणयो सहावस्थिति  
 स्यात् कार्यानुसूतस्थोपादानत्वात् । तथाच भाव  
 क्षणिकत्वमतमङ्ग । तस्मान्नासत्, तदुत्पत्तिः । दीप-  
 स्त्रेय घटादेर्निरन्वय विनाश मनान्ते त दूपयति ॥४॥

भावाना धीपूर्वकोध्वस प्रतिसख्याननिरोध ।  
 तद्विलक्षणस्त्वप्रतिसख्याननिरोध । आवरणाभावमात्र-  
 माकाशम् । एतत् त्रय निरुपाख्य शून्यमिति यावत् ।  
 तदनात् सर्वं क्षणिक । यदुक्तम् । बुद्धिविधा  
 वयादनात् सङ्कत क्षणिकश्चेति । तत्राकाश परत्र

उपत्र कार्यकुम्भि असत्त्वि कहने होता हय, उपादान, कार्यका  
 अनुसूतत्वि रहता हय । अत्ति अनुसूत उपादान यो असत्  
 नत्ति होकर सत्त्वि होय सो होनेभे कार्य यो उपादानमेति  
 उत्पन्न होता, सो उपादानके सहित सबदात्ति एकत्र अवस्थान  
 करता इमिवास्ते भावक्षणिकत्व मतकाभि मङ्ग होता । इत्ति  
 वास्ते असत्त्वेतिभि सतका उत्पत्ति कोइ प्रकारसेति स्वीकार्य  
 होय नत्ति शक्ता है इस वाद यो सब दीपके नयाय घटादिका  
 निरययेपका विनाश स्वीकार करते है, उह लोगके मतमे  
 दोषारोप करते है ॥ ४ ॥

भावसम्पूर्णका बुद्धिपूर्वक ध्वसका नाम प्रतिसख्याननिरोध  
 इति प्रकार उसिका विपरीतताई अप्रतिसख्याननिरोध । आव  
 रणाभाव मात्रत्ति आकाश, ईह तिनो निरुपाख्य अयात् शून्य ।  
 इत्तिनाय अवर सम्पूर्ण क्षणिक । कहा गया है निरोधद्वयत्ति

निराकरिष्यति । निरोधे तावन्निगाकाकरोति प्रति-  
सखेति । एतयोर्निरोधयोरप्राप्तिरसम्भवः सात् ।  
कुत, अविच्छेदात् । सतो निरन्वयविनाशाभावात् ।  
अवस्थान्तरापत्तिरेव सतो द्रव्यस्तीत्पत्तिर्विनाशश्च ।  
अवस्थाश्रयो द्रव्य त्वेक स्याथीति । न च दीपनागस्य  
निरन्वयत्ववीक्षणान्द्यत्वापि तथास्त्विति वाच्यम् ।  
अवस्थान्तरापत्तेरेवान्द्यत्र नागत्वे निश्चिते दीपेऽपि  
तस्या एव तत्त्वेन निश्चयेत्वात् । अनुपलम्भस्त्विति-  
सौक्ष्मादेव । सहस्रानो निरन्वयश्लेहिनागस्तर्हि क्षणा-  
नन्तरं विश्वं निरुपाख्यं पश्येत्सूक्ष्मं न भवेन्नैवमस्ति ।  
तस्मादनुपपन्नं स ॥ ५ ॥

आकाश इह तिनो पदार्थमेति भिन्नं परमाणुं वो पृथिवी प्रभृति  
पदार्थं सम्पूर्णं बुद्धिगम्यं वो क्षणिकं । तिस्रं विचमे आकाश  
पिच्छु निराकृतं होयगा । इमं वखत् निरोधद्वयं निगाकृतं होता  
है । अविच्छेद हेतु अर्थात् सहस्रानां निरन्वय विनाशका अभाव  
हेतु उक्तं निरोध दोनोका अप्राप्ति अर्थात् असम्भव होता है ।  
अवस्थान्तरापत्तिर्हेतु सत् द्रव्यका उत्पत्ति । विनाश वो अवस्था-  
श्रय । एक द्रव्यद्विका स्याथी ; दीपनागका शून्यत्व दर्शनका  
अन्यत्र अयसा कदा नहि याय शक्ता है । अन्यत्र अवस्थान्तरा-  
पत्तिर्हेतु नागरूपमे निर्णीतं हुया । तव् दीपमेभि अवस्थान्तरा-  
पत्तिभि निश्चय कर्तने होता है । पत्तिस्त्वस्त्व प्रयुक्तहि उक्ता  
उपपत्ति होता हय नहि । सहस्रानां विनाश वो, उक्ता शून्यत्व

अथ तदभिमतता मुक्तिं दूषयति । योऽयं ससार-  
हेतोरविद्यादेर्निरोधो बोद्धैर्मीचोऽभिमत । स किं  
साक्षात्तत्त्वज्ञानात् स्यात् स्वयमेव वा ? नादां निर्हेतु-  
कविनाशस्वीकारवैयर्थ्यात्, नेतर साधनोपदेशैर्ने-  
र्यक्यादितुभयथापि विचारासहत्वात् तदभिमतो  
मोक्षोऽपि न सिध्यति । आकाशस्य निरुपाख्यत्व  
निरस्यते । आकाशे या निरुपाख्याताभिमतता सा न  
सम्भवति । कुत अविशेषात् । इह श्येन उत्पततीति

हि होता, सो होनेसे तमकोभि क्षणान्तरमे विचक्रु श्रुतगहि  
देखने पाते इस प्रकार तुमभि निजमेभि नहि रहते एव प्रकार  
कभिभि घटना नहि होता हय । इसियास्ते कहा हुवा मत-  
अनुपपन्नहि होता हय वा अयोग्य होता है ॥ ५ ॥

इम् वाद तदभिमत मुक्तिमेभि दोषारोप करत है ।  
बौद्धगणने ससार हेतु अविद्यादिका निरोध कोहि यो  
मोक्ष विवेचना करते है, सो मोक्ष क्या तत्वज्ञानमेति होता हय  
वा आप्से होता हय ? उसको तत्वज्ञान निमित्तक कहा नहि  
याय शक्ता है । कारण, उह होनेसे निर्हेतुक विनाश अर्थात्  
अप्रतिमङ्गानिरोधका स्वीकार व्यथ होता हय । द्वितीय पक्षभि  
सङ्गत होता है नहि कारण आपसे मोक्ष होता है कहनेसे,  
साधनोपदेश निरर्थक होय जाता है । इस प्रकारसे उभय  
पक्षहि विचारासह होता हय । इस वास्ते तदभिमत मोक्षभि  
सिद्ध होता हय नहि । इस वखत् आकाशका निरुपाख्यत्व

प्रतीत्या तत्रापि पृथिव्यादिवह्नावरूपत्वात् गन्धादि-  
गुणानां पृथिव्यादिवस्तुश्रयत्ववीक्षणच्छब्दगुणस्याप्या-  
काशो बन्तुभूत एवाश्रय इत्यनुमानाच्च । “वायुराकाश-  
सश्रय” इति त्वदुक्तासङ्गतेश्च । अपि च आवरणाभाव-  
मात्रमाकाशमिति न शक्यं वक्तुं चोदात्मत्वात् ।  
तथाहि न तावत् प्राग्भावादिवयमाकाशः । पृथिव्यादे-  
गवरणस्य सत्त्वेन । तदप्रतीतिप्रसङ्गात् विश्व निरा-  
काशं स्यात् । आकाशस्य सत्त्वेन पृथिव्यादाप्रतीति

निरासं करोति है । आकाशमे यो शून्यता अभिमतं हुवा है सो  
अविशेषवशत उहमि समग्र नहि होता हैय । आकाशमे ईरन  
पत्नी जडता हैय । इह प्रकारका प्रतीति हेतु आकाशमेभि  
पृथिव्यादिते नयाय भावरूपत्व दृष्ट होता हैय कहने इस तरह  
गन्धादिगुण जिस प्रकार पृथिव्यादि वस्तुको आश्रय कर रहता  
है, उस तरह शब्दगुण आकाशरूप वस्तुको आश्रय कर रहता है  
कहने, विशेषरूप “वायुराकाशसश्रय” इह तुमारा निजोक्तिका  
असङ्गति होता हैय कहने पृथिव्यादि वस्तुका सहित आकाशका  
कोई विशेष नहि रहनेसे इ आकाशको शून्य कहने नहि  
याय शक्ता है । अवरभि अयोक्तिकत्व प्रयुक्त आवरणाभाव  
मात्रहि आकाश, इह प्रकारमि कहा नहि जाय शक्ता है ।  
जिस हेतु आकाशको प्राग्भावादि अभाववदका मध्यमे निवेश  
करा नहि जाता है । पृथिव्यादिका आवरणका सत्ता हैय ।  
आकाश यो कीर्तिकाभि आवरणाभाव अर्थात् कीर्तना आवरण नहि

प्रसङ्गाच्च । नाप्यन्योन्याभाव तस्य तत्तदावरणगतत्वेन  
 तन्मध्याकाशाप्रतीतिप्रसङ्गादिति यत्किञ्चिदेतत् ।  
 यत्रावरणाभावस्तदाकाशमिति चेत्तर्हि वस्तुभूतमेव  
 तत् आवरणाभावेन विशेषितत्वात् तस्मात् पृथि  
 व्यादिवद्भावभूतमेवाकाश न तु निरुपाख्यम् । अप्र  
 भावस्य क्षणिकत्व दूषयति । पूर्वानुभूतवस्तुविषया  
 धीरनुस्मृति । प्रत्यभिज्ञेति यावत् । समस्त वस्तु

हय, इस प्रकारके अभाव पदाय, सो होनेसे, वह पृथिव्या  
 दिका आवरण होने नहि शक्ता भया । इसिवास्ते विष्व आकाश  
 रहित होय गया आकाशका सत्ता स्वीकारमे सहस्रुका अप्रतीति  
 निवन्धन पृथिव्यादिकाभि अप्रतीतिका प्रसङ्ग होता हय । वह  
 आवरणाभावरूप आकाशकु अनगोनराभावमि कहा नहि जाय  
 शक्ता हय कारण उक्त अनगोनराभाव पृथिव्यादिका आवरणकाहि  
 अस्तगत कहके पृथिव्यादिका मध्यगत आकाशका अप्रतीति प्रसङ्ग  
 होता है वा घटता है । इह सम्यग्भने और अधिक कहना  
 निष्य योजन । जिममे आवरण नहि रहे, उसको यो आकाश  
 कहा याय, सो होनेसेमि वह आकाशका वस्तुभूतत्वहि अथात्  
 भावत्वहि होता है कारण, आकाश आवरणाभावरूप एकहि  
 विधिप वस्तु, अयसाहि सिद्ध होता है । इसवास्ते आकाश अभाव  
 नहि होयके पृथिव्यादि भावपदायका सदृश एकठो भावपदार्थ  
 हि होता है । वह शून्य वा अवस्तुभूत नहि हय । इस  
 वाट भाव पदायका क्षणिकत्व पक्षमे दोष दिखाने है ।

तदेवेदमिति पूर्वानुभूतमनुसन्धीयतेऽत चणिकत्व'  
 भावस्य न । न च सेय गङ्गा तदिद दीपार्च्चिरितिवत्  
 सादृश्यनिवन्धना न तु वस्तुवैकनिवन्धना सेति वाच्य  
 सादृश्यग्रहीतुरेकस्य स्थायिनो भावेन तद्योगात् ।  
 किञ्च वाङ्मे वस्तुनि कदाचित् सशय स्यात्तदेवेद  
 तत्सदृश वेति यात्मनि तृपलब्धरि न कदाचित्  
 अन्यानुभूतेऽन्यस्मृत्यसम्भवात् । न च सन्तानैक्य

पूर्वानुभूतवस्तुविप्रयिणी बुद्धिका नाम अनुस्मृति । अनुस्मृति  
 शब्दे प्रत्यभिज्ञादि बोधित होय मालुम करणा चाहिवे । ईह  
 मोहि पूर्वानुभूत वस्तु हि, एहि प्रकार समारमे सम्पूर्ण वस्तुका  
 हि पूर्वानुभूतत्व अनुसन्धित होता हय । इसवास्ते भाव पदार्थ  
 कभिभि चणिक होय नहि शक्ता है । “सोइ एइ गङ्गा” “सो  
 एहि दीपगिखा” इत्यादि प्रतीतिके नयाय प्रत्यभिज्ञामात्रहि  
 सादृश्यनिवन्धना, ऐक्यता निवन्धना नहि हय, इस प्रकार कहा  
 नहि जाय शक्ता है । एकठो स्थायी वस्तु बिना सादृश्यग्रहीता  
 का उसि प्रकार पूर्वानुस्मृतिका ज्ञानहि होय नहि शक्ता है ।  
 अवरभि याह्यवस्तुमे कभि न कभि, ईह क्या मोहि है, अथवा तत्  
 सदृश हय, ईस प्रकारके मन्देह होय शक्ता, किन्तु उपलब्धि  
 कक्षाका आत्माने मन्देह होने नहि शक्ता है । अनय कर्तृक  
 अनुभूत वस्तुमे अनयका अनुस्मृति समग्भव हय । सन्तान अर्थात्  
 ज्ञानाधार ऐक्यताको हि यो मोहि बुद्धिका नियामक कहा

ज्ञानगतेन तदाकारेणानुमीयत इति । अथोभय-  
साधारणदोषमाह ॥ ७ ॥

एव भावक्षणिकतया सदुत्पत्तौ स्वीकृतायामुदा-  
सीनानामुपायशून्यानामपुत्रपेयसिद्धि स्यात् क्षणभङ्ग-  
वादे भावभावस्य परक्षणस्थित्यभावादिष्टानिष्टाभिपरि-  
हारयोर्लोकदृष्टयोरहेतुकत्वमतोऽनुपायवतामपि तत्-  
प्राप्ति स्यात् । उपेयलिप्सु, कश्चिदपि कुवापुत्रपाये न  
प्रवर्त्तत सुर्गाय मोक्षाय वा न कोऽपि प्रयतेत । न  
चैवमस्ति सर्व्वस्यापुत्रपेयार्थिन सोपायता तथैवोपेय

तदाकारमे अनुमेय कहा नहि जाता है । इसवाद् उभय साधा-  
रण दोष दिखते है ॥ ७ ॥

इस प्रकारसे भाव पदायकु क्षणिक कहनेसे, अस्तुमेति  
अस्तुका उत्पत्तिका स्वीकार करने होता है । सो होनेसे  
उपायशून्य उदासीनका उपेयसिद्धि स्वीकार्य्य होता है ।  
क्षणभङ्गवादसु भाव पदाय मात्रकाहि उत्पत्तिका परक्षणमे  
स्थितिका अभाव प्रयुक्त इष्टका स्वीकार अनिष्टका परिहाररूप  
शोक दृष्ट हेतु निरर्थक होता है । सो होनेसे, उपायहीन  
व्यक्तियोंका इष्टप्राप्ति घटता है । इसिवास्ते अथर कोईभि उपेय  
लिप्सु होकर कभिभि कोई उपायसे कोई प्रवृत्त होयगा नहि ।  
कोईभि स्वयं वा मोक्षके निमित्त चेष्टा करेगा नहि । किन्तु  
अयमा देखनेमे नहि आता है । सम्पूर्णहि उपेयलिप्सु होकर  
तिम् निमित्त चेष्टा करते है । इसि प्रकार उपायसेति उपेय

लाभश्च प्रतीयते । तस्माद्विश्वप्रतारणार्थमेतयोः प्रवृत्तिः ।  
 यौ किल भावभूतस्कन्धहेतुका समुदायोत्पत्ति सूक्त्या-  
 पि पुनरभावाद्भावोत्पत्तिमूचतुः क्षणिकानामप्या-  
 त्मनां सुर्गापवर्गसाधनानुपादिदिशतुरिति तुच्छस्तत्-  
 सिद्धान्तः । तदेव वैभाषिके सौत्रान्तिके च निरस्ते ।  
 विज्ञानमात्रवादी योगाचार प्रत्यवतिष्ठते । वाह्ये  
 वस्तुन्यभिनिवेशमानानां केषाञ्चिच्छिप्रप्राणामनुरोधेन  
 वाह्यार्थप्रक्रियेयं सुगतेन रचिता । तस्या न तस्याशयः  
 विज्ञानस्कन्धमात्रतात्पर्यात् । तथाहि विज्ञेयो  
 घटादर्थे विज्ञानान्नातिरिच्यते । तस्यैवार्थाकार-

---

नाम दिखार्हं भाता है । इसवास्ते लोकप्रतारणार्थेहि उह  
 लोगका प्रवृत्ति कहने होयगा । यो लोग भावभूत स्कन्धहेतुक  
 समुदायोत्पत्ति स्वीकार करकेभि पुन अभावसेति भावोत्पत्ति  
 कहते है, अवरभि क्षणिक आत्माका स्वर्ग वो मोक्षका साधन  
 सम्पूर्णका उपदेश करते है, उह लोकका सिद्धान्त अतीव तुच्छ  
 होता है । इस प्रकारसे वैभाषिक वो सौत्रान्तिक निरस्त होती  
 भये । इस वस्तुत विज्ञानमात्रवादि योगाचारका मत निरा-  
 करण निमित्त प्रकरणान्तर आरम्भ करते है । वाह्य वस्तुमे  
 अभिनिविष्ट कोई कोई शिपरका अनुरोधसे सुगत मुनि एह  
 वाह्यार्थ प्रक्रिया रचना करते भये । किन्तु ईह प्रक्रियामे उनका  
 अभिप्राय दृष्ट होता हैय नहि । तिम हेतु विज्ञानस्कन्ध-



त्वात् । न चार्थान् विना व्यवहारासिद्धिं तान्  
 विनापि स्वप्नवत् सिद्धे । वाद्धार्यास्तित्ववादिनापि  
 ज्ञाने अर्थाकारत्वधर्मीऽवश्यं मन्तव्यं । कथमन्यथा  
 घटज्ञानं पटज्ञानमिति व्यवहारीपपत्तिः । तथाच  
 तेनैव तत्सिद्धौ किमर्थः । ननु कथमान्तरं ज्ञानं  
 घटपर्व्यताद्याकारकम् । सैवम् । ज्ञानं किल प्रकाश-  
 मानम् । निराकारस्य तस्य प्रकाशासम्भवात् साकार-

मावह्नि अत्र स्कन्धं सम्पूर्णका तात्पर्यं देखनेमें आता है ।  
 विद्मेय घटादि पदार्थं विज्ञानसेति अतिरिक्तं नहि है ।  
 कारण, विज्ञानहि अर्थाकारमें परिदृष्ट होता है । अथवा  
 अर्थव्यतिरेकमें व्यवहार सिद्धि सम्भव होता है नहि । अर्थ  
 व्यतिरेकमें व्यवहारका सिद्धि स्वप्नका सदृश । वाह्यवस्तुका  
 अस्तित्व यो लोग स्वीकार करते है उह लोकाभि ज्ञानमें अर्था-  
 कारत्व धर्म अवश्य स्वीकार्य । अत्रया घटज्ञान पटज्ञान,  
 इस प्रकारके व्यवहारहि उपपन्न होता है नहि । ज्ञानसेति  
 यो व्यवहारका सिद्धि मया, सो होनेमें वाह्यवस्तुका अर्थाकारका  
 कोइमें प्रयोजन दिखाई आता है नहि । सुद्र मनकास्थित  
 आन्तर ज्ञान किस प्रकारमें घट वो पर्व्यतादि आकारमें प्रकाशित  
 होता है ईह प्रकारमें आशङ्का किया जाय नहि शक्ता है ।  
 कारण, ज्ञान प्रकाशमान वस्तु । यो निराकार, उक्ता प्रकाशमें  
 सम्भव होता है नहि । ईसिवास्तो योहि ज्ञानका साकारत्वहि  
 स्वीकार्य होता है । यो कहो, वाह्यवस्तु नहि रहनेमें बुद्धिका

मेव तत् । ननु कथमसति वाह्येऽर्थे वैचित्र्याम् ।  
 वासनावैचित्र्याद् भवेत् । वासनाहेतुकस्य तद्वैचित्र्या-  
 स्यान्वयव्यतिरेकाभ्यामवधारणात् । ज्ञानज्ञेययो  
 सहोपलम्भनियमादपि न ज्ञेय ज्ञानात्किञ्चनम् । किन्तु  
 ज्ञानात्मकमेवेति । इह सगय । सर्व्वं ज्ञानात्मक-  
 मिति युज्यते न वेति स्वप्नवदिनाप्यर्थान् ज्ञानेनैव  
 व्यवहारसिद्धेः पृथक् तदङ्गीकारे फलानतिरेकाच्च  
 युज्यत इति प्राप्ते वाञ्छार्थस्याभावो न शक्यो वक्तुम् ।  
 कुत ? उपलब्धे । घटस्य ज्ञानमित्यादौ ज्ञानान्य-

वैचित्र्य किस प्रकारमे घटेगा, तदुत्तरमे वक्तव्य इह हयगा, वासना-  
 वैचित्र्यमेति बुद्धिका वैचित्र्य होता हय । अनुय वो व्यतिरेकमेति  
 वैचित्र्यस्य वासनाहेतुक कहनेइ स्थिर किया जाता हय । अवरभि,  
 ज्ञान वो ज्ञेयवस्तुका सहोपलम्भ नियमसेति ज्ञानवस्तुका ज्ञेय-  
 वस्तुमेति अमेदसिद्धान्तित होता हय । ज्ञेयवस्तु ज्ञानात्मक हि  
 जानना । इह स्थलमे सगय एहि हय, सम्पूर्ण वस्तुकोहि ज्ञानात्मक  
 कहना युक्त वा अयुक्त ? स्वप्नकातुल्य अय भिन्न व्यवहारसिद्धि  
 देखनेमे एय कहिये इसि प्रकार उहको पृथक् कहने स्वीकार  
 करनेमेभि फलका अनतिरेक दिखाई होनेसे ज्ञानात्मक कहनाहि  
 युक्त होता है इसि प्रकार पूर्व्व पक्षमे उत्तरमे कहते है । जिससे  
 प्रतिनियतहि उपलब्ध होता है, तव वाह्य वस्तु यो नहि हय,  
 इह प्रकार कहा नहि याय गता है । घटका ज्ञान इत्यादि

स्यार्थस्योपलम्भात् । न चोपलब्धमपलपन ग्राह्या वाक्  
 प्रेक्षावताम् । न च नाहमर्थं नोपलभे अपितु ज्ञानानां  
 नोपलभे इति वाच्यम् । उपलब्धिवलेनैव तदन्य  
 ताया गले निपातनात् । घटमह जानामीत्यादौ  
 ज्ञाधात्वर्थम् सकर्मक सकर्तृकञ्च सर्व्वीलोक प्रत्येति  
 प्रत्याययति चान्यान् । तेन ज्ञानमात्र साधयन  
 सकलोपहासहेतुरिति भिन्नोऽर्थो ज्ञानात् ॥ ८ ॥

स्थानमेहि ज्ञानमेति अतिरिक्त वाह्यवस्तुका उपलब्धि होता है ।  
 यो प्रत्यक्षका अपलाप करते है, उनका कहना कभिभि ज्ञानियोक्ति  
 निकट वाह्य होने नहि भला है । हम वाह्य उपलब्धि अर्थ  
 उपलब्धि नहि करते है, इस तरहभि कहनेकु नहि सका जाता  
 है । कारण वाह्य अर्थ उपलब्धि नहि करते हय अयसा कहने  
 सेहि ज्ञानातिरिक्त वाह्य अयकाहि उपलब्धि नहि करते हय  
 इहई प्रतिबोधित होता भया । तत्कालमे उभि प्रकारका ज्ञान  
 अनिवार्य्य । इम् घटकु जानते हय एहि वाक्यसे सम्पूर्णहि  
 ज्ञाधातुका अय सकर्मक यो स्वकर्तृक उपलब्धि करते है इसि  
 प्रकार अजर कोभि उपलब्धि करावते है ज्ञाधातुका अयमेति  
 ज्ञानमात्रहि बाधित होनेसे पूर्व्वयथा सदहिका उपहासास्पद  
 होते हय । इसवास्ते उक्त वाक्यस्य अर्थपदज्ञान भिन्नहि ज्ञान  
 करावते है ॥ ८ ॥

ननु ज्ञानान्यथेद् घटादिस्तस्य प्रकाश कथं  
ज्ञाने चेत् तर्हि एकस्मिन् सर्वस्य प्रकाशः स्यात्  
अन्यत्वाविशेषादिति चेन्न । तस्मिन्नेऽपि तस्मिन् यत्र  
विषयतास्यः सम्बन्धस्तस्यैव नानास्येति व्यवस्थानात् ।  
पीतरक्तादिविषयकसमूहानलम्बनस्य विरुद्धनानापीता-  
द्याकाशसम्भवाच्च । यत् तु महोपलम्बनियमादर्थो  
ज्ञानात्मेति तदसत् साहित्यस्यार्थभेदहेतुकत्वात् ।

यो ज्ञो, ज्ञानमेति भिन्न वस्तु, घटादि उक्ता प्रकाश  
किस्तरे ज्ञानेति होयगा ? जिसहेतु उह प्रकार स्वीकार करनेसे  
एक घटका ज्ञानमे निश्चिन्त वस्तुकाहि ज्ञानमे स्वीकार करने  
होयगा । कारण, घटादि निखिल वस्तुहि घटादिमेति भिन्न  
हय । ईह प्रकारने युक्तिभि सङ्गत होय नहि गता है । जिस  
हेतु निखिल वस्तु ज्ञान भिन्न होनेसेभि घटादि यो विषयमे ज्ञान  
का विषयता सम्बन्ध स्थिर होयगा, सो विषयइ सो ज्ञानमे  
प्रकाश पावेगा, अवर कोई विषयई प्रकाश पावेगा नहि । इस  
प्रकार व्यवस्था हय । अनया रक्तपीतादि विषयक समूहानलम्बन  
ज्ञानका विरुद्ध नानापीतादि प्रकारभि सम्भव होय पडता है,  
किन्तु समूहानलम्बन ज्ञानका नानात्मक सम्भावना दृष्ट होता  
हय नहि । कोई कोई कहते है, यव ज्ञान वो अर्थका एकहीके  
सहित अनयोकाभि उपलम्बन निरमित भया है तव अर्थ वो ज्ञान  
एकहि हय । किन्तु उह लोका उह मत अयुक्त हय । कारण

ततश्च तयोस्तन्नियमो हेतुफलभावनिमित्तीभन्तव्यः ।  
 किञ्च घाद्यमर्थं निरस्यता मौगतेन तस्य पृथक् सत्त्वं  
 स्वीकृतम् । यत्तदन्तर्ज्ञेयं रूपं तद्वहिर्बुद्ध्यभासत  
 इति तदुक्ते । अनयावत् कारणामन्वयः । नहि  
 यन्ध्यापुच्छो यन्ध्यापुच्छवदिति कश्चिदाचक्षीत ॥ ८ ॥

अथ बाह्यार्थान् विनापि वासनाहेतुकेन ज्ञान-  
 वैचित्त्रेण स्वप्ने यथा व्यवहार एव सर्वं जागरे अपि  
 स्यादिति दृष्टान्तेन साधितं दूषयति । स्वप्ने मनो-

बोधि साहित्यं अथस्तेति ज्ञानका भेदहि मातुमं करावता इय ।  
 इमवास्ते उह नियम, हेतुभाय यो फलभायका बोधक कहनेई  
 समभना चाहिये । विशेषत मौगतमतावन्मवियेने बाह्य  
 वस्तुका निरास करके उस्काभि उहका पृथक सत्ता स्वीकार करते  
 भये, कारण यो उस्का अन्तवर्ती प्रेरणरूप, उहई बाह्य वस्तुका  
 नयाय प्रकाश पायता है, मौगत लीगका एहि निजका उन्निकर  
 अन्तगत 'यो बो बोधि' एह दोनो शब्दमेति बाह्यवस्तु पृथक सत्ता  
 स्वीकार करणा भया है । अनया उह भोग 'बाह्यवस्तुका नयाय'  
 ईह प्रकारके वाक्यहि प्रयोग करते नहि । यन्ध्यापुच्छहु  
 कोईभि यन्ध्यापुच्छका नयाय इस प्रकार कोईभि कहते नहि  
 इय ॥ ८ ॥

इस वाद बाह्य अथ व्यतिरेकहि वासना हेतुक ज्ञान वैचित्त्र  
 मेति स्वप्ने यो रूप व्यवहार होय, तद्रूप व्यवहार जायत भवस्या

रथे च यथा घटाद्यर्थाकारकज्ञानमात्रसिद्धो व्यवहार-  
 स्तथा जागरेऽपि भवेदित्येतन्न सम्भवति । कुतः  
 वैधर्म्यात् । स्वप्नजागरप्राप्तयोर्व्यस्तुनोरसाधर्म्यादेव  
 स्वप्ने स्वप्ननुभूत स्मर्यते जागरे तु प्रत्यक्षेणानुभूयते ।  
 स्वप्नोपलब्धक्षणद्वयमात्रेणानाद् भवति वाधितञ्च बोधे ।  
 जागरोपलब्ध तु वर्षशतानन्तरमपि तद्धर्मकमवाधित-  
 ञ्चेति । किञ्च स्वप्नेऽनुभूतं स्मर्यते इति प्रत्युक्तिमात्र  
 मेभि होवे, इस प्रकारके यो मत दृष्टान्तसेति प्रकाश किया गया  
 है, इस वस्तु उन्हे दोपारोप करते हय । परम्पर वैधर्मता यगत  
 स्वाप्रिक यो जाग्रत एकरूपता स्वीकृत होय नहि शक्ता है । स्वप्नमे  
 मनोरथ घटादिका आकार वो आकारित ज्ञान मात्रसेति सिद्ध  
 व्यवहार जिस प्रकार, जाग्रत अवस्थामेभि व्यवहार तद्रूप, अयसा  
 कदाभि नहि जाता है । कारण, स्वप्नका धर्म, जाग्रतका धर्मसेति  
 सम्पूर्ण विभिन्न । स्वाप्रिक वस्तु वो जाग्रत वस्तुका परम्पर  
 सहधर्मता दृष्ट होता हय नहि । स्वप्नमे पूर्वानुभूतका स्मरण  
 होता हय । किन्तु जाग्रत अवस्थामे प्रत्यक्षहि अनुभव होता  
 हय । स्वप्न दृष्ट वस्तु सम्पूर्ण क्षणद्वयके बीचमेहि अनयरूप होता  
 हय । इसि प्रकार स्वप्नागमने उह वाधितभि होय शक्ता हय,  
 किन्तु जाग्रत दृष्ट वस्तुका उह प्रकारके रुपान्तर नहि होता हय ।  
 उह भाजभि यो प्रकार हय यत वरप वादमेभि उसि प्रकार  
 रहता हय, इसि प्रकार वाधितभि नहि होता है, अवर एक यात,  
 उह स्थानमे स्वप्नमे पूर्वानुभूत वस्तुकाहि स्मरण होता हय, उह

बोधः । सुमतन्तु सुमादानुभाव्य तावन्मात्रसमय  
वस्तु सुप्ते परेश सृजतीति मन्थे सृष्टिराहृष्टीत्यादिना  
वेदान्तसूत्रे वक्ष्यते ॥ १० ॥

। यत् तृक्त विनाप्यर्थान् वासनावैचित्र्याज् ज्ञान  
वैचित्र्यमुपपद्यत इति तन्निगसायाऽवासनाना भावो  
न सम्भवति । कुत ? अनुपलब्धे । तन्मते वाद्यार्था-  
प्राप्ते । अर्थमृला किल वासनार्थान्वयव्यतिरेकसिद्धा ।  
तव त्वर्थानङ्गीकारात् सा न सम्भवेत् । किञ्च वासना  
नाम सम्कारविशेषः । सा च स्थिरमाश्रय विना न

यो उक्ति उह प्रतुगक्ति भावहि मालुम करणा चाहिये । सूत्रकार  
वेदव्यामका निच मत अयसा नहि ह्य । वेदान्तसूत्रमे “ सन्धे  
सष्टिराहृष्टि” आपना मत प्रकाश करे है इसका अर्थ स्वप्ने यो  
कुछ देखा याय, उह तत्कालमे परमेश्वर कर्तृक सृष्ट होय रहता  
है इह प्रकार कह्ये है ॥ २० ॥

अर्थ ध्यतिरेकमेभि वासना वैचित्र्यतावशत ज्ञानवैचित्र्य  
उपपन्न होता ह्य इह प्रकारके यो वादी कह्ये है उसिका निरास  
करना होता है । अनुपलब्धता हेतु वासनाका सत्ताहि स्वीकार  
करनेकु नहि सका जाता है । पृथ्व पचीका मतमे वाद्यार्थहि  
नहि ह्य, वासना अर्थमूलकमात्र । अर्थ रहनेसेहि वासना  
रहता है, अर्थ नहि रहनेमे वासनाभि नहि रहता है इसवामो  
वाद्यार्थका अभावमे वासनाका अस्तित्वहि असम्भव होय पडता

समस्तीत्याह । वासनाश्रय स्थिरपदार्थी नैव तेऽस्ति ।  
 कुत ? क्षणिकत्वात् । प्रवृत्तिविज्ञानस्थालयविज्ञानस्य  
 च सर्वस्य क्षणिकत्वाङ्गीकारात् । नहि त्रिकालस्थिर-  
 सम्बन्धिनि चेतनेऽसति देशकालनिमित्तसापेक्ष-  
 वासनाध्यानस्मरणादिव्यवहार, सम्भवेत् । तथा  
 चाश्रयाभावान्न सा तद्भावाच्च न तद्वैचित्र्यमिति  
 तुक्तो विज्ञानमात्रवाद ॥ ११ ॥

एव योगाचारेऽपि निरस्ते सर्वशून्यत्ववादी

हे । विशेष हेतु वामना सम्कारविशेष । स्थिर आश्रय विना  
 उक्ता मता कभिभि सम्भव होय नहि शक्ता हे । पूर्वपक्षीका  
 मतमे सम्पूर्ण पदार्थहि क्षणिक । सम्पूर्ण पदार्थहि यद्यपि  
 क्षणिक भया, तव वासनाका आश्रय स्वरूप स्थिर पदार्थहि रहा  
 नहि । उह श्लोक यो प्रवृत्तिविज्ञान वो आलयविज्ञान स्वीकार  
 करत हे, उह दोनोकोभि क्षणिक कहे हे । त्रिकालसम्बन्धि  
 चेतन पदार्थका सता स्वीकार नहि करनेसे देशकाल निमित्त  
 सापेक्ष वासना, ध्यान या स्मरणादि कोई व्यवहारहि सम्भव नहि  
 होय शक्ता । इसवास्ते पूर्वपक्षीका मतमे तादृश आश्रयका  
 अभावमे वासनाहिका अभाव घटता हे । वासनाका अभावमे  
 वासनावेचित्त वा तद् हेतु ज्ञानवेचित्त कोइकाभि सम्भव होता  
 हय नहि वा होने नहि सका इसवास्ते उह विद्वान्मयाट तुच्छहि  
 होता हे ॥ ११ ॥

इमि प्रकार योगाचारका मत निरस्त करके 'मन्व म्निन्



माध्यमिक प्रतिपद्यते । बुद्धेन बाह्यार्थान् विज्ञान  
 स्थाङ्गीकृत्य विनेयबुद्धारोहाय सोपानवत्तत्र क्षणिक  
 त्वादि कल्पितम् । न तु ते तच्च वर्त्तन्ते । शून्यमेव  
 तत्त्व । तदापत्तिरेव मोक्ष इत्येव तन्मतरहस्यम् ।  
 युक्तञ्चेत्तत् । शून्यस्याहेतुसाध्यत्वेन सूत सिद्धे ।  
 सतो हेत्वपेक्षिणोऽपुत्रत्पत्तानिरूपणाच्च । तथाहि  
 न तावद्भावाद्वात्पत्ति सत । अनष्टादीजादितोऽ-  
 द्भुगद्वात्पत्तादर्शनात् । नाय्यभावात् । नष्टादीजा-

शून्यवादी माध्यमिकका मत खण्डन करते है । बुद्धमुनि बाह्य  
 अर्थ को विज्ञान अङ्गीकार करके विनेयबुद्धिमें आरोहण निमित्त  
 सोपानके नशाय उह लोगका क्षणिकत्वादि कल्पना करे है ।  
 किन्तु माध्यमिकका मतमें क्या बाह्यार्थ, क्या विज्ञान, क्लृप्ति  
 नहि हैय । एहि मतमें शून्यहि तत्त्वं एव सोहि शून्यपत्तिहि  
 मोक्ष । इहै एहि मतका रहस्य । उह लोगका यक्ष्यमाण  
 प्रकारमें स्वमतका यौक्तिकताई प्रदर्शन करते रहते है । उह  
 श्लोक कहते है, शून्य अहेतु साध्य, इसवास्ते स्वत सिद्ध । यो  
 स्वत सिद्ध सोइ तत्त्वं । शून्यहि तत्त्वं । महसु कारणपेक्षि होनेसे भि  
 उक्ता उत्पत्तिका निरूपण नहि होता हैय । कारण, भाव पदाय  
 से ति महसु उत्पत्ति कहा नहि जाय शक्ता हैय । बीज नष्ट नहि  
 होनेसे उम्में अकुरका उत्पत्ति देखनेमें नहि आता हैय । अवरभि  
 अभावमेति उक्ता उत्पत्ति कहा नहि जाय शक्ता हैय वा कहना

द्वितीयातस्याद्दुराटेर्निरुपाख्यतापातात् । न च  
 स्वतः । आत्माश्रयतापत्तेरानर्थक्याच्च । न तु परतः ।  
 परत्वाविशेषेण सर्वस्मात् सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गात् ।  
 एवमुत्पत्ता-भावादिनाशा-भावः । तस्मादुत्पत्ति-  
 विनाशमदसदादिक विभ्रममात्रमत शून्यमेव तत्त्व-  
 मिति । इह सशयः । शून्यमेव तत्त्वमिति युक्तं न  
 वेति ? शून्यस्य सूत.सिद्धे रितरेषा पदार्थाना भ्रान्ति-  
 विजृम्भितत्वेनासत्ताच्च युक्तमिति प्राप्ते निरस्यति ।

नहि चाहिये । नष्ट बीजादिसे जात अक्षुरादिका होना सम्भव  
 होनेसे मिथ्यात्वहि प्रतिपादित भया । आपहिसे अक्षुरादिका  
 उत्पत्ति कहा नहि याय गता हय, कारण सी होनेसे आत्माश्रय  
 दोय अनिवार्य हीय पडता हय इसितरह अनर्थक्यभि घटता है ।  
 परमेति उत्पत्ति स्वीकारभि क्रिया नहि याय गता है । जिस  
 हेतु उह स्वीकारमे परत्वका अविशेषतावगत सम्पूर्ण वस्तुमेति  
 सम्पूर्ण वस्तुका उत्पत्ति प्रसङ्ग होता है । इह प्रकारमे उत्पत्तिका  
 अभावमे विनाशकाभि अभाव होता हय । इसवास्तु उत्पत्ति  
 विनाश, सत् दो असत् प्रभृति सम्पूर्णहि असाध्यक । शून्यरहि  
 एक मात्र तत्त्वं । इहमे सशय एहि यो माध्यमिकका शून्यरहि एक  
 मात्र तत्त्वं, इह मत युक्त या अयुक्त ? शून्यो यो स्वतः सिद्ध तव  
 तदतिरिक्त पदार्थमात्रहि यव भ्रान्ति विजृम्भित तव उह युक्तहि  
 होता है । मूलपद्यीका एहि प्रकार सिद्धान्तका अणुकार्य कहते

शून्यमिति वदन् भावमभावं भावाभाव वा प्रति  
 पादयेत् । सर्वथा नाभिमतसिद्धिः । कुतः ? अनुप-  
 पत्तेरयुक्तत्वात् । तथाहि आद्यनिष्ठापत्तिः, द्वितीयं  
 प्रतिपादयितुर्भावस्य तत्साधनस्य च सत्त्वात् सर्व-  
 शून्यताहानिः । तृतीयं तु विरोधो अनिष्टता चेति ।  
 किञ्च येन प्रमाणेन शून्यं साध्यं तस्य शून्यत्वे शून्य-  
 वादहानिः, तस्य सत्यत्वे सर्वसत्यताप्रसङ्गश्चेति दुष्ट  
 शून्यवादः । एवं मिथोविरुद्धमितीनिरूपणावजगत्

है। सब्ब था अनुपपत्ति प्रयुक्त उह प्रयुक्तहि होता है। सोहि शून्य  
 भाव कया अभाव अथवा भावाभाव ? ए तिनीका कोइठोभि प्रति  
 पादन किया नहि जाता है। उस्का यो बुद्ध प्रतिपादनका चेष्टा  
 किया जायगा, उसिमे अभीष्टसिद्धिका हानि होयगा। कारण,  
 उस्का कोइठोभि युक्त होता हय नहि। शून्यभावरूपत्वका आदौ  
 अस्वीकारहेतु उस्का तादृशत्व स्वीकार प्रथमपक्षमे अनिष्ट होता  
 हय। द्वितीयपक्षमे शून्यका अभावरूपत्वका स्वीकार प्रतिपादन  
 क ताकाभि तत्साधनका अस्तित्ववशत सर्वशून्यताका हानि  
 होता है। एव तृतीयपक्षमेभि विरोध वो अनिष्टापत्ति उभयहि  
 घटता है। अधिकन्तु यो प्रमाणमेति शून्यका साधन किया  
 जायगा उस्का शून्यमे शून्यवादका हानि एव उस्का सत्यत्वमे  
 सब्ब सत्यता प्रसङ्ग घटता हय कहके शून्यवाद दुष्ट होता है।  
 इमि प्रकारका परस्पर विरुद्ध मतवयका निरूपणमे बुद्धका जगत्

प्रसारकता बुद्धस्यावनीयते । लोकायतिकादिमता-  
दि खतितुच्छत्वाद्भगवद्ब्रह्मसूरिभिः प्रत्याख्यातं,  
नोद्दिष्टतानीति वेदितव्यम् । एतेन बौद्धनिगमिन  
तत्सदृशी मायी च निरस्तः । क्षणिकत्वमनुसृत्य  
दृष्टिदृष्टिवर्णनात् शून्यवादमाश्रित्यविवर्तनिरूपणाच्च  
तस्य तत्सादृश्यम् ॥ १० ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे बौद्ध-  
निगमनामा द्वितीयः पादः ॥

प्रसारकताई अनुमित होता है । लोकायतिकादिका मत प्रति  
तुच्छ कहते भगवान् चन्द्रसूरि प्रकृति तत्प्रत्याख्यानका लक्ष्यम गच्छि  
करे है । इहैव मालुम करने होयगा मायावादी अद्वैतवादी  
वेदान्तिकीने बौद्धका क्षणिकत्वपक्षका अनुसरणसु दृष्टिपूर्वक  
मुष्टि वर्णना करे है । ऊह सब शून्यवादका आश्रयमे विवर्तन वाद  
निरूपण करते है कहते ऊह लौकिका बौद्धके सहित सादृश्य देखा  
याता हय । इसवास्ते मायावाद यो बौद्धक सदृश सो स्थिर  
रहता है ॥ १२ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने बौद्धनिगम  
नामक द्वितीयः पादः ॥

## तृतीय पाद ।

दत्त्वा विद्यौषध भक्तान् निरवद्यान् करोति य ।

दृक्पथ भजतु श्रीमान् प्रीत्यात्मा ऋषभ स्वयम् ॥

पृथ्वीमथ्या 'अग्निर्पिण्या सप्त कुलकरा वभुदुस्तेपु  
सप्तमोनाभिनामा कुलकरस्तस्य भार्या मरुदेवी वभूव  
तत्पुत्रो भगवान् ऋषभदेव । पुनश्च तस्मिन् समये  
तेनैव भगवता युगलधर्मोनिवारित । पुनश्च वर्णादि-  
विभागश्च कृत । तस्य भरतवाहुवलिप्रभृतय सुता  
वभूवु । पुनश्च ब्राह्मी सुन्दरी द्वे पुत्रौ स्त । ताभ्या  
सर्वा कला प्रदर्शिता । एवञ्च भगवान् प्रजापति  
क्रमेण च राज्य परिमुञ्च्य भरतस्य अयोध्याराज्य दत्त्वा  
वाहुवलयेच तक्षशिलाराज्य दत्त्वा अनेपाञ्च अष्टा-

प्रथम इस अधःसपिणी कालमें मात कुलगर होते भए तिनोमें  
सप्तम नाभिनामा कुलगर तिस्की भार्या मरुदेवी तिस माताका  
कुञ्चिमें ऋषभदेव भगवान् उत्पन्न भए । फिर उम समयमें युगल  
धर्म दूर करके चारवर्णों का स्थापना किया । भगवान्नि  
भरतादि गतपुत्र होते भए । फेर ब्राह्मी सुन्दरी दोय पुत्री होता  
भई उनको निम्बन कलाका प्रादि लेके कला मय दिखाइ । इस्तरे  
भगवान् प्रजापतिने मख व्यवहार नीतिमाग चलाया क्रमसेती  
राजा परिभोग करके भरतको अयोध्याका राजा देकरके वाहु

नवतिपुत्राणां खनाम्ना देशांश्च दत्त्वा भगवान् दीक्षा  
 ललौ तदैव भगवता चतुर्थमनपर्यायज्ञानमुत्पन्नं पुनश्च  
 केवलज्ञानोत्पत्तानन्तरं तीर्थस्थापना कृता । एवञ्च भग-  
 वान् धर्मं प्रकटीकृत्य अष्टापदादौ अर्थात् कैलास-  
 गिरौ निर्व्वाणं प्राप । अस्य विशेषचरित्रविज्ञानं  
 इवामवेसदा कल्पसूत्रस्य वृत्तौ कल्पद्रुमकलिकाया  
 विज्ञेयम् । यथा ऋषभदेवस्य चरित्रं तथैव श्रीश्रुजितनाथ-  
 स्यापि भगवतो विज्ञेयं धर्मस्थापने विसवादी नास्ति ।  
 पुनश्च सर्वेऽपि तीर्थकराः स्वयं सम्बुद्धा भवन्ति । एवञ्च  
 क्रमेण चतुर्विंशतिः तीर्थकराः मोक्षमार्गस्वरूपकाः  
 बभूवुः एषा धर्मप्ररूपणायां परम्यरं विसवादी  
 नास्ति । इत्येवं सर्वेऽपि मनान्ते ॥ १ ॥

बनिकु तक्षशिना राज्ञः देहे फेर अष्टानवति पुत्रोकी अपने अपने  
 नामके देश देहे दीक्षा लेते भए । उमी बहुत चतुर्थ ज्ञान उत्पन्न  
 भया । फेर केवल ज्ञान उत्पत्तिके अनन्तर चतुर्विध तीर्थ स्थापना  
 किया । इसारे भगवान् धर्म प्रकट करके अष्टापदगिरि पर निर्व्वाण  
 प्राप्त भए इनोका विशेषचरित्र कल्पसूत्रका वृत्तिमें जानना ।  
 जैसा ऋषभ देव स्वामीकी चरित्र धर्माधिकारमें है तैसेही श्रुजित  
 भगवानवामी जानना तीर्थकर मध्य स्वयं बुद्ध होते है ज्ञानादि  
 मोक्षमार्ग प्ररूपणाने विसवाद नहि है सर्व एकदम मोक्षमार्ग  
 मानते है ॥ १ ॥

। पदार्थो द्विविधः । जीवोऽजीवश्चेति । तत्र जीवश्चेतन कायपरिमाण सावयव । अजीव पञ्चविध धर्माधर्मपुद्गलकालाकाशभेदात् । गतिहेतुधर्म । स्थितिहेतुरधर्मश्च व्यापक । वर्ण गन्ध रस स्पर्शवान् पुद्गल । स च द्विविध परमाणुस्तत्सङ्घातश्च वायुग्निजलपृथिवीतनुभुवनादिक । पृथिव्यादिहेतव परमाणवो न चतुर्विधा किन्त्वेकस्वभावा । स्वभावपरिणामात्तु पृथिव्यादिरूपो विशेष । कालस्त्वतीतादिव्यवहारहेतुरणुश्च । आकाशस्त्वेको अनन्तप्रदेशश्चेति । तदेव षोडश पदार्था द्रव्यरूपस्तदात्मकमिदं जगत् । तेषु चाणुभिन्नानि पञ्चद्रव्या-

पदाय द्विविधः । जीवो अजीवः । तन्मध्ये जीवश्चेतनशरीरपरिमाणो सावयवः । अजीवः पञ्चविधः, यथा धर्मः, अधर्मः, पुद्गलः, कालः च आकाशः । यो गतिहेतुः सोऽहिर्धर्मः, यो स्थितिहेतुः सोऽहिर्अधर्मः । सोऽहिर्अधर्मः व्यापकः । जिह्वा वर्णः, गन्धः, रसः चोऽस्पर्श इत्येते पुद्गलः । पुद्गलः परमाणुरूपो तत्सङ्घातरूप एते द्वौ विधौ । वायुः, अग्निः, जलः, पृथिवी चो भुवनादिका नामहि भुवनात् । पृथिवीका कारणं सम्पूर्णं चार प्रकारमहि इत्येते, एते एक प्रकारः । एते लोगका परिसेति विशेष विशेषवशुः । अतीतादि व्यवहारका निदानश्च कालः । सोऽहिर्कालः पणुरूपः । आकाशः एकः चो अनन्तः प्रदेशः । एते पञ्चविधः पदार्थाः

अस्त्रिकाया इत्याख्यायन्ते । जीवास्तिकाय, धर्मा-  
स्तिकाय अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकायः आकाशा-  
स्तिकायः इति । अस्तिकायशब्दोऽनेकदेशवर्ति-  
द्रव्यवाची । जीवस्य मोक्षोपयोगितया बोध्यान् सप्त  
पदार्थान् वर्णयन्ति । जीवाजीवास्रवसम्बरनिर्जरवन्ध-  
मोक्षा इति । तेषु जीवः प्रागुक्तो ज्ञानादिगुणकः ।  
अजीवस्तद्भोग्यजातम् । आस्रवत्यनेन जीवोविषये-  
ष्वित्यास्रव इन्द्रियसङ्घात । सृष्ट्णोति विवेकादिक-  
मिति सम्बरो अविवेकादिः । निःशेषेण जीर्व्यत्यनेन  
कामक्रोधादिरिति निर्जर । केवलुच्चनतप्रशिलारोह-

द्रव्यरूप । निखिल जगत इति तदात्मक । तिष्ठे अणु, भिन्न अपर  
पांचटोहि द्रव्य अस्तिकाय एहि आस्रवामे आस्रवात होता इय ।  
उह लौगका नाम यथाक्रममे जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय,  
अधर्मास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय वो आकाशास्तिकाय । अनेक-  
देशवर्ति द्रव्यादि अस्तिकाय शब्दमे अभिहित होता इय । इह  
मतमे जीवका मोक्षोपयोगी सातटो पदार्थ स्वीकृत भया इय ।  
कोहि सात पदार्थ यथा—जीव, अजीव, आस्रव, सम्बर, निर्जर,  
वन्ध यो मोक्ष । तिष्ठे जीवका स्वरूप पूर्वमे कहा गया इय,  
जीव ज्ञानादिगुणसमन्वित । जीवका भोग्य पदार्थहि सम्पूर्ण  
अजीव । जीव जितसेति विषयमे अभिनिविष्ट होते इय, सो  
इन्द्रिय सम्पूर्णका नामहि आस्रव । जितसेति विवेक आस्रव



यादि । कर्माष्टकेणापादितो जन्ममरणप्रवाह  
बन्ध ॥ २ ॥

तदष्टकं चैव । चत्वारि घातिककर्माणि पाप-  
विशेषरूपाणि यै ज्ञानदर्शनवीर्यसुखानि स्वाभा-  
विकान्यपि जीवस्य प्रतिहन्यन्ते । चत्वारि त्वघाति-  
कर्माणि पुण्यविशेषरूपाणि यैर्देहसंस्थानतदभि-  
मानतत्कृतमुखदुःखापेक्षोऽपेक्षासिद्धिः । स्वशास्त्रोक्त-  
साधनैस्तदष्टकादिमुक्तस्याविर्भूत-स्वाभाविकात्मरूपस्य  
जीवस्य सद् ऊर्ध्वगतिरलोकाकाशस्थितिर्वा मुक्तिः ।

होता ह्य, भो अविवेकहि सम्पर नाम कहना ह्य । जिससेति  
काम क्रोधादि नि शेषमे जीण होय उसिका नाम निजर, यथा  
केशतुच्छन तप्तशिलारोहणादि । कर्माष्टकमेति अपादित जन्म  
मरणका नाम बन्ध ॥ २ ॥

आठो कर्मके विचने चारठो पापविशेषरूप घातिक कर्म  
एव चारठो पुण्यविशेषरूप अधातिक कर्म । घातिक कर्म  
चारठोमेति जीवका स्वाभाविक ज्ञाने दर्शन, वीर्य वो सुख  
विनष्ट होत ह्य । और अधाति कर्मचारोसेति जीवका देह  
संस्थान, तदभिमान एव तत्कृत सुखमे वो दुःखमे अपेक्षा वो  
उपेक्षाका सिद्धि होय । स्वशास्त्रोक्तसाधनसमृद्धसेति उक्त कर्मा-  
ष्टकमेति विमुक्ति लाभ होनेसे स्वाभाविक आत्मस्वरूपका आवि-  
भाव होता ह्य । तव जीव ऊर्ध्व गति प्राप्त होयने आनोकाकाशने

सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्याख्य रत्नत्रय तत्साधन ।  
 तानेतान् पदार्थान् सप्तमङ्गिना न्यायेनावस्थापयन्ति  
 यथा स्यादस्ति १, स्यान्नास्ति २, स्यादव्यक्तव्य ३,  
 स्यादस्तिच नास्तिच ४, स्यादस्तिचाव्यक्तवाच्य ५, स्यान्ना-  
 स्तिचाव्यक्तवाच्य ६ स्यादस्तिचनास्तिचाव्यक्तवाच्येति ७ ॥३

स्थित या मुक्तिलाभ करते है । समग्र ज्ञान, समग्र दर्शन,  
 समग्र चारित्र्य एहि तिगो रत्नहि ओहि मुक्तिका साधन । ज्ञान-  
 धर्मावलम्बितगणोने सप्तमङ्गी न्यायसेति ओहि सम्पूर्ण पदार्थ  
 स्थापन करते हय । उक्त सप्तमङ्गी न्याय यथा स्यात् अस्ति  
 यो कोइ तरे रहे, तव हय, एहि कयचित अस्तित्वज्ञापक  
 न्यायइ प्रथम न्याय । स्यान्नास्ति यो कोइ तरह नहि रहे, तव  
 नहि, एहि असत्त्वविश्वासवक न्यायहि दुसरा न्याय । स्याद-  
 व्यक्तव्य यो कोइ तरे रहे, तव अव्यक्तव्य एहि क्रममे प्रथम वो  
 द्वितीय उभय विदधामे तृतीय न्याय । स्यादस्तिच नास्तिच,  
 यो कोइ तरह रहे, तव हय अथवा नहि हय, एहि युगपत् प्रथम  
 यो द्वितीय उभय विदधामे चतुर्थ न्याय । सत्, असत्, एककालमे  
 मोलना अथवा एहिठो सम्भा वनेवास्तेहि एहि चतुर्थ न्याय  
 प्रवति त भया हय । स्यादस्ति चाव्यक्तव्य, प्रथम यो चतुर्थक  
 विदधामे पञ्चम न्याय इस्ता अथ यो कोइ तरह रहे, तव हय,  
 अथच उह अव्यक्तव्य हि । स्यान्नास्ति चाव्यक्तव्य एहि द्वितीय यो  
 चतुर्थका विदधामे षष्ठ न्याय । स्यादस्ति च नास्ति चाव्यक्तव्य  
 यो कोइ तरह रहेतो हय, यो कोइ तरह नहि हय तव नहि

स्यादिति कथंचिदित्यर्थेऽवाय । सप्ताना नियमाना  
 भङ्गा विद्यन्ते यस्मिन् प्रतिपाद्यतयेति सप्तभङ्गी ।  
 सत्त्वम् १, असत्त्वम् २, सदसत्त्वम् ३, सदसद्विल-  
 क्षणत्व ४, सत्त्वे सति तद्विलक्षणत्व ५, असत्त्वे सति  
 तद्विलक्षणत्व ६, सदसत्त्वे सति तद्विलक्षणत्व ७,  
 इतिवादिभेदेन पदार्थविषया सप्त नियमा भवन्ति ।  
 तद्भङ्गार्थमय न्याय । स च सवत्रावश्यक सर्वस्य  
 पदार्थस्य सत्तासत्तानित्यत्वानित्यत्वभिन्नत्वाभिन्नत्वा  
 दिभिर्धर्मैरनैकान्तिकत्वात् ॥ ४ ॥

अथच अव्यक्तव्य हि । एहिठो प्रथम द्वितीय यो चतुय विषयानि  
 सप्तम न्याय ॥ ३ ॥

एहि सप्तभङ्गी न्यायका स्यात् इकचचित्त अथमे अव्यय ।  
 जिह्मे सप्त नियमका वा युक्तिका भङ्ग इय, उचिका नाम सप्तभङ्गी  
 न्याय । सत्त्वं, असत्त्वं, सदसत्त्वं, सदसद्विलक्षणत्व, सत्त्वं, रहतेभि  
 तद्विलक्षणत्व, असत्त्वं, रहतेभि तद्विलक्षणत्व, औरभि सत्त्वं, यो असत्त्वं,  
 रहतेभि तद्विलक्षणत्व, इह प्रकार वादिभेदमे पदाद्य विषयमे सातठो  
 नियम दिग्वाइ आवे इय । उचिका भङ्ग निमित्त एहि सप्तभङ्गी  
 न्याय । इह सम्पूर्ण स्थानमे प्रयोजनीय इय । सम्पूर्ण पदायकाहि  
 सत्त्वं, यो असत्त्वं, नित्यत्व यो अनित्यत्व, एव भिन्नत्व यो अभिन्नत्व  
 प्रभृति धम्म समूहस्येति अनैकान्तिकत्व अर्थात् अनिश्चयता  
 होय कहनेहि एहि सप्तभङ्गी न्याय स्वीकार करने होयगा ।

तथाहि यद्येकान्ततोवस्तुस्त्वस्तौव तर्हि सर्वदा सर्वत्र  
 सर्वात्मनास्त्येवेति न तदीप्साजिहासाभ्या क्वचित्  
 कदाचित् कुत्रचित् कश्चित् प्रवर्तते निवर्तते वा ।  
 प्राप्तस्याप्राप्तत्वात् हेयहीनासम्भवाच्च । अनेकान्तपक्षे  
 तु क्वचित् क्वचित् कदाचित् कस्यचित् केनचि-  
 द्रूपेण सत्त्वे हेयोपादानसम्भवात् । प्रवृत्तिर्निवृत्ति-  
 श्योपपद्येत द्रवापर्यायात्मकं कालं सर्वं वस्तु । तत्र  
 सर्वात्मना सत्त्वादिकमुपपद्येत । पर्यायत्मनात्व-  
 सत्त्वादिकं पर्यायास्तु द्रवावस्थाविशेषा ।

कारणं यो वस्तु एकान्तहि रहि, सो हीनेसे, सर्वदा सर्वत्र  
 सर्वप्रकारमे रहिगा । प्राप्ति इच्छा वा त्यागका इच्छामेति  
 कोइरूपमे कभिभि कहिभि कोइ प्रवृत्त वा निवृत्त होयगा नहि ।  
 जिस हेतु प्राप्तका वा अप्राप्तका एव हेय वस्तुका वो त्यागका  
 असम्भावना प्रयुक्तहि श्रीहि तरह होय रहता हय । अनेकान्त  
 पक्षमे कोइरूपमे कहिभि कभिभि कोइलिभि कोइ प्रकारमे सत्त्वं  
 रहनेसे उक्ता त्याग वा ग्रहणका सम्भावना होता हय । एव  
 सो हीनेमे प्रवृत्ति वा निवृत्तिभि उपपन्न हीनेमे आता हय ।  
 सम्युक्त वस्तुहि द्रव्य पर्यायात्मक । 'द्रव्यस्वरूपमे सत्त्वादिसम्पूर्ण'  
 हि उपपन्न होता हय । और पर्यायरूपमे असत्त्वादिका उपपत्ति  
 होता हय । 'द्रव्यका अवस्थाका नामविशेषका नामहि  
 पर्याय । पर्याय सम्पूर्ण भावात्मक वा अभावात्मक दोनोहि

तेषां भाष्यभावात्मकतया सत्त्वासत्त्वादेशत्पति-  
रिति ॥ ५ ॥

इति भाष्यसारज्ञानसिद्धान्तसूत्रे प्रथमखण्डे  
ज्ञानसूत्रनामा तृतीय पाद ॥

चतुर्थ पाद ।

सप्रति शिक्षिताभिमानिनः केऽपि केऽपि  
विद्यारत्नमहानुभावभावुकास्तथाच माध्यात्यशिक्षया  
सुशिक्षिता इङ्गलिस-गन्धपाठानुकारिणः अनुमाना-  
भासचेष्टया ब्रह्म जैनधर्म आधुनिकस्तथा बौद्धधर्मस्य  
शास्त्रैकमावेति जल्पिनस्तेषां भ्रमनिरासनिमित्तं

इसवास्ते उह भोगका सत्त्वं वो असत्त्वं उभयहि सङ्गत होता  
हय ॥ ४१५ ॥

इति भाष्यसारज्ञानसिद्धान्तसूत्रे प्रथमखण्डे  
ज्ञानसूत्रनामक तृतीय पाद ॥

अथ शिक्षिताभिमानि किई सतीवाले विद्यारत्न महाशयादि  
इतिगादि अन्य पाठभे करनीवाले अनुमानाभास चेष्टा करके  
असा कहते हैं कि जैन धर्म आधुनिक आचार बौद्ध धर्मका  
शास्त्रासि निकले हैं । उनो के भ्रम निरास करीकेवास्ते पुरातन

इह पुरातनजैनाचार्य्यभगवत्प्रतापचन्द्रप्रभृतिभि-  
 र्येन्याययुक्त्या बौद्धधर्मोनिगमितस्तथा जैनसमय-  
 निरूपणादद्विविधपरिदतमाण्डलिना मध्ये व्यास-  
 वाख्यानुरूपामृतकल्पगिरया जैनधर्म अनादिज्ञानोत्-  
 पन्न कृतादियुगेष्वस्थित इदानीमप्यस्ति, भाविकाले-  
 ऽपिस्थास्यत्वानुरक्तानुदशतो मरुग्रैवयोग्ये विवेचिते हि  
 कुशल अस्माकमेव अम सफलो जात इति मन्यामहे ।  
 स्मृतौच—यन देनी महागजस्तत्रोपायात्तुरान्वित ।  
 सभाया तस्य वेनस्य प्रविवेश स पुण्यवान् । तं दृष्ट्वा  
 समनुप्राप्त वेन प्रश्न तदाकरोत् । भवान् कोहि

प्रतापचन्द्र प्रभृति आचार्यो नै नयाययुक्ति करके बौद्धधर्मका खण्डन  
 किया है । तथाच जैन समय निरूपणा करगेवानी परिदतगणो के  
 मध्यम व्यागवादयानुरूप अमृततुण्डवाणी करके जैन धर्म अनादि  
 कालोत्पन्न है अं गा कहा है कृतादि युगमेभि या उस्का प्रमाण  
 स्मृतिमें लिया है अथाभि है भविष्यत् मे होगा । अथ ऋषभ  
 भगवान अहं ताकानुपदिष्टत्वयोगे जैन धर्मो नित्य है तथा स्मृतौच  
 अर्थात् युक्तिमें कहा है । भगवान अहं नृदेवगतगुणकर्म्मनक्षण  
 अर्थसमूह तिल्य है अर्थात् त्रैकालिक है और आनन्दरूपत्व  
 दिखाता है अहं त विज्ञान करके आनन्दरूप अनृत धीरगण  
 देखते हैं । ए प्रत्यक्ष और अनुभावमे जाना जाता है ।

इति भाष्यसारजैनसिद्धास्तरत्ने मुग्धबोधनामक चतुर्थ पाद ॥

समायात ईदृक्कुरूपधरो मम । सभाया वद मामत्र तृण  
 कक्षात्ममागत । को वैप किन्तु ते नाम को धर्मं वार्म  
 कि तव । को वेदस्ते क आचार कि तप का प्रभा-  
 वना । कि ज्ञान-वा प्रभावतो कि सत्य धर्मात्प्रवृत्तम् ।  
 तत् त्व सर्वं समाचक्षु ममाग्रे सत्यमेव च । श्रुत्वा  
 वेनस्य तद्वाक्य पुण्यावाक्यमुदाहरत् । मत्सन्ध उवाच ।  
 करोष्येव तथा राज्यमहाभट्टो न सशय । अह धर्मस्य  
 सर्वस्वमह पूज्यतम सुरै । अह ज्ञानमह सत्यमह  
 धाता सनातन । अह धर्म अह मोक्ष सर्वदेवमयो-  
 द्यहम् । ब्रह्मदेहात्ममुद्भूत सत्यमधोऽस्मि नान्यथा ।  
 जिनरूप विजानीहि सत्यधर्मकलेवर । ममरूप हि  
 ध्यायन्ति योगिनो ज्ञानतत्परा ॥ वेन उवाच । तवेव  
 कीदृश कर्म कि ते दर्शनमेवच । किमाचारो पदसुहि  
 द्रव्यकृतेन भृमुजा ॥ मत्सन्ध उवाच । अहन्तो  
 देवता यत्र निर्यन्त्योगुरुच्यते । दया वै परमोधर्म-  
 स्तत्र मोक्ष प्रदृश्यते । ईदृशोऽस्मि न सन्देह आचार  
 प्रयदास्यह । यजन याजन नापि वेदाध्ययनमेव च ।  
 नास्ति सन्ध्या तपो दान स्वधास्वाहावित्रर्जित । इव्य  
 कव्यादिक नास्ति नास्ति यज्ञादिका क्रिया । पितृणा  
 तर्पण नास्ति नातिथिवैश्वदेविक । कृणाम्य न तथा

पूजाह्यर्हन्तध्यानमुत्तम । एव धर्मसमाचारो जैनमार्गे  
 प्रदृश्यते । एतत्ते सर्व्यमाख्यात जैनधर्मस्य लक्षणम् ॥  
 वेन उवाच । देदे प्रोक्तो यथा धर्मी यत्र यज्ञादिका,  
 क्रिया । पितॄणा तर्पणं श्राद्धं वैश्वदेव न दृश्यते । न  
 दानं न तपोवास्ति किं वै धर्मस्य लक्षणं । वद सत्य  
 ममाये त्व दयाधर्मश्च कौटुम्भिकः ॥ सत्यसन्ध उवाच ।  
 पञ्चतत्त्वप्रवृत्तौऽय प्राणिना काय एव च । आत्मा वायु-  
 स्वरूपोऽय तेषा नास्ति प्रसङ्गता । यथा जलेषु भूता-  
 नामपि सङ्गमवेहि तत् । जायते बुद्बुदाकार तद्वत् भूत-  
 समागमः । पृथ्वीभावो रज स्थस्तु चापस्तत्रैव सस्थिता ।  
 ज्योतिस्तत्र प्रदृश्येत वायुरावर्तते च चीन् । आकाश-  
 सावृणोत् पथाद्बुद्बुदत्व प्रजायते । अप्सु मघी प्रभात्वैव  
 सुतेजो वर्त्तुल पर । जगन्मात्र प्रदृश्येत तत्क्षण नैव  
 दृश्यते । तद्वद्भूतसमायोग, सर्वत्र परिदृश्यते । अन्त-  
 काले प्रयात्यात्मा पञ्च पञ्चसु यान्ति ते । मोहमुग्धा-  
 स्ततोमर्त्या वर्त्तन्ते च परम्पर । श्राद्धं कुर्वन्ति मोहेन  
 क्षयाहे पितृतर्पण । क्वास्ति मृत, समन्नातिकीदृशोऽसौ  
 नरोत्तम । किं ज्ञान कौटुम्भिक कार्य्यं केन दृष्ट वदस्व न ।  
 कस्य श्राद्धं प्रदीयेत सा तु श्रद्धा निरर्थिका । अन्यदेव  
 प्रवचामि वेदाना कर्म दास्यते । यदातिथिर्गृह



याति भोजन लभते ध्रुव । तदा चाहत्य राजेन्द्र अतिथि  
 परिभोजयेत् । अश्वमेधे मखे त्वश्वं गोमेधे उपमेवच ।  
 नरमेधे नर राजन् वाजपेये तथाह्वजं । राजसूये  
 महाराज प्राणिना घातन बहु । पुण्डरीकं गजं  
 हन्यात् गजमेधे तु कुञ्जर । सौवामणा पशु मेधे मेघ-  
 मेव प्रदृश्यते । नानारूपेषु सर्वेषु श्रूयता नृपनन्दन ।  
 नानाजातिविशेषाणा पशूना घातन स्मृत । कस्मा-  
 हि दीयते दान किं नु दानस्य लक्षण । न दत्तमुत्-  
 कट ज्ञेय क्रियते यदि भोजन । अत्यन्तदोषहीनास्तान्  
 हिंसन्ति यान्महामखे । तत्र किं दृश्यते धर्म किं फल  
 तत्र भूपते । पशूना मारण यत्र निर्दिष्ट वेदपण्डि-  
 तैः । तस्माद्दिनष्टधर्मञ्च न पुण्य मोक्षदायक । दया  
 विना हि यो धर्मं स धर्मो विफलायते । जीवाना  
 पालन यत्र तत्र धर्मो न सशय । स्वाहाकार स्वधा  
 कारस्तप सत्यो नृपोत्तम । दयाहीन निष्फल स्यात्  
 नास्ति धर्मस्तु तत्र हि । एते वेदा अवेदा सुर्दया  
 यत्र न विद्यते । दयादानपरोनित्य जीवमेव प्ररक्षयेत् ।  
 चाण्डालो वा स शूद्रो वा स वै ब्राह्मण उच्यते ।  
 ब्राह्मणो निर्दयो यो वै पशुघातपरायण । स वै सुनिर्दय  
 पापी कठिन क्रूरचेतन । यचनै कथ्यते वेद स वेद

ज्ञानवर्जितः । यत्र ज्ञान भवेन्नित्यं तत्र वेदः प्रति-  
 ष्ठितः । दयाहीनेषु वेदेषु विप्रेषु च महामते । नास्ति  
 सत्यं क्रिया तत्र वेदविप्रेषु वै कदा । वेदा अवेदा  
 राजेन्द्र ब्राह्मणा सत्यवर्जिता । दानस्यापि फलानास्ति  
 तस्मात् दानं न दीयते । यथा श्राद्धस्य वै चिह्नं तथा  
 दानस्य लक्षणम् । जिनस्यापि च यद्दर्मं भुक्तिमुक्ति-  
 प्रदायकम् । तवायं ऽहं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यप्रदायकम् ।  
 आदौ दया प्रकर्तव्या शान्तभूतेन चेतसा । आराधयेत्  
 हृदा देव जिनमेकं चराचरम् । मनसा शुद्धभावेन  
 जिनमेकं प्रपूजयेत् । नमस्कारं प्रकर्तव्यस्तस्य देवस्य  
 नान्यथा । अन्यत्र । कृतयुगेऽपि दानवा ऊचुः । दद  
 दीक्षां महाभाग सर्वसमारमोचनीं । तथेत्याहोशना  
 दैत्यान् गच्छामीनर्मदामनु । भो भोस्तज्जत वासांसि  
 दीक्षां कारयितास्मि व । एष ते दानवा भीष्म  
 भृगुरुपेण धीमता । आङ्गिरसेन ते तत्र कृता दिग्वास-  
 सोमुरा । वर्हिषिष्कध्वजं तेषां गुञ्जिकाचारुमालिका ।  
 दत्ता चकार तेषान्तु शिरसोलुञ्चनं पुनः । केशाना-  
 मुत्पाटनञ्च परमं धर्मसाधनम् । धनानामीश्वरो देवो  
 धनदः केशलुञ्चनात् । सिद्धिं परमिकां प्राप्तुं सदा-  
 वैषस्य धारणात् । मुनित्वं लभ्यते ह्येष पुरा प्राज्ञ-

ईत, स्वयं । बालोत्पाटेन देवत्व मनुष्यैर्लभ्यते त्विह ।  
 किं न कुर्वन्ति तत्तुम्हान महापुण्यप्रद यत । मनो  
 रथोहि देवाना लोकी वै मानुषे कदा । अस्मिन् वै-  
 भारते वर्षे जन्म वै श्रावके कुले । तपसा युक्तमात्मानं  
 केशोत्पाटनपूर्वकम् । तीर्थङ्कराश्चतुर्विंशत्तथा तेषु  
 पुरस्कृतं । ह्यायाकृत फणीन्द्रेण ध्यानमात्रप्रदेशिक ।  
 अथ ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभु-  
 सुपाश्वर्य-चन्द्रप्रभु सुविधि-शीतलनाथश्रेवस-वासुपूज्य-  
 विमल-अनन्त धर्मशान्ति कुशु-अरनाथमतिमुनि-मप्रत  
 नमि नेमिनाथ-पार्श्वनाथ महावीर २४ एते वर्तमान  
 जिना । स्तुवन्त मन्त्रवाटेन सर्गाहस्तगतोहि स ।  
 मोक्षो वा भविता नून विचारागो न कथ्यते ।  
 कदा वा ऋषयोभूत्वा सूर्याग्निसाधने तप । जप्त्वा  
 विरागिनश्चैव मनुषञ्चाङ्कं तथा । तथा तपस्यता  
 ऋत्युगताना कालपर्ययात् । पाषाणेन शिरोभग्न भवते  
 पुण्यकर्मणा । दधिमिष्टान्नभक्तेषु पश्चाद् वै रोपण कृत ।  
 अरण्ये निर्जनेन्यास कदा वै भविता हि न । कर्णाजाप्य  
 श्रावकाश्च करिष्यन्ति समाहिता । भो भो ऋषे, न  
 गन्तव्य यथाह्वयन्ति ते सुरा । विघ्नकर्तुं हि ते मत्वा  
 त्वाज्या सर्वे दिवौकस । क्षणविश्वमिनो रौद्रा

मायावन्तो दुरासदाः । यदि त्वामाह्वयेद् ब्रह्मा विष्णुर्वापि  
 महेश्वरः । वरुणो पावकी वापिन गन्तव्य तथा त्वया ।  
 स्वर्गन्याई वहिःस्थानमर्हताना प्रतिष्ठित । तत्र  
 त्वया च गन्तव्य मोक्षभागी यतोभवान् । लघूनीमानि  
 स्थानानि भृयोवृत्तिकराणि च । त्याज्यानि तेन  
 चैतानि सत्यमेव वचो हि नः । अस्मदीयेन तपसा  
 नियमैर्दिपिधैस्तथा । व्रजत्वचोत्तम स्थान मोक्षमार्गश्च  
 ये बुधा । विन्दन्ति भक्तिभावेन तपोयुक्तास्तपरिवन ।  
 अक्षेषु नियतो यत्र दया भूतिषु सर्व्वदा । तत्तपो धर्म्म  
 द्रव्युक्त सर्वा चान्या विडम्बना । ज्ञात्वैतद्भवता  
 साधो गन्तव्य परम पदम् । या वै तीर्थकरा याता  
 या गति योगिनी गता । एव वै देवता पूर्व विद्याधर-  
 महोरगा ॥

इति भाष्यसारणेनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे  
 मुग्धबोधनामा चतुर्थः पादः ॥

नभोऽङ्ग ते ।

द्वितीय खण्ड ।

प्रथम पाद ।

प्रणमामि चन्द्रसुरीं य साखादादुक्तिकण्टकान् ।  
क्वित्वा युक्त्यसिना विप्रव अर्हत् क्रीडास्थल वाधात् ॥  
खपत्ते परैरुद्गाविता दोषा निरस्ता प्रथमे पादे  
सहाद् । द्वितीये सौगतचतुष्टयशिष्यादिवादाना  
युक्त्याभासमयता प्रदर्शिता । तृतीये तु जिनसूत्र ।  
चतुर्थे मुग्धबोध समाप्तश्चाय खण्ड ।

जिनो ने साखादिको की उक्तिरूप कण्टको को युक्तिरूप  
खड्ग करके छेदन पूर्वक समस्त मसारको श्रीमान अह त्देवका  
क्रीडास्थल किया है असे चन्द्रसुरि प्रभृति आत्मशक्तिको प्रणाम  
करता हू ॥

अपने पक्षमें पर उद्गावित दोष समस्त प्रथम पादके विष  
निराम किए है । उर दुसरे पादके विषे बौद्धके चारो शिष्यो  
को वादादिको की युक्त्याभासमयत्व प्रदर्शित किया हैं । तृतीय  
पादके विषे आत्मवाच्यरूप जो जिनसूत्र सो निरूपण किया है ।  
उर चतुर्थ पादके विषे मुग्धबोध अयात् अज्ञानको मृत्यादि  
शास्त्र द्वारा जेन धम्म अनादि है असा बोधन किया है ।  
इति पादचतुष्टयस्य प्रथम खण्ड ।

द्वितीयखण्डारम्भे साम्यवेदान्तादिदोष दृष्ट्वा  
अतीर्हं तदितरत् सर्वं विहाय सर्वात्मभावेन  
तेराराध्य इत्यर्थे अयं खण्डारम्भ ।

जैनसिद्धान्तरत्नवाक्यादि व्याचक्षाणैः सम्यग्-  
दर्शनादिप्रतिपक्षभूतानि निराकरणीयानीति तदर्थ  
पर खण्डः ।

तैत्तिरीयोपनिषत्सु एकादशानुवाच द्वितीया  
स्मृति —यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपस्थानि  
नो इतराणि । अस्यार्थ —यान्यस्माकमाचार्याणां  
सुचरितानि शोभनचरितानि जैनधर्मास्त्रायादविरु-

उपरि द्वितीय खण्डारम्भके विषये साद्वयवेदान्तन्यायादि दर्शन  
शास्त्रों का दोष दर्शन करके इससेती अर्हं दृष्टित धर्म है  
उससे व्यतिरिक्त सर्वकोत्याग करके सर्वप्रकार करके भक्तजनों  
को कहा अर्हंन आराध्य है इस अर्थ के विषये द्वितीय खण्डका  
आरम्भ करते हैं ।

जैन सिद्धान्तरत्न वाक्यका व्याख्या करनेमें तत्प्रतिपादनार्थ  
समयज्ञान् समयदर्शन समयक्चारित्रका वैरिस्वरूप साख्यादि  
दर्शन शास्त्रका मत खण्डन करना आवश्यक है । एवं ऐ करनेमें  
इहा द्वितीय खण्डका आरम्भ हुआ वेदमें उक्त है) । जैनधर्म  
शास्त्रका अविरোধ हमारे लोका आचार्यगणोंका सुचरित सकल

ज्ञानि तान्येव त्वयोपास्यानि अदृष्टार्थान्यनुष्ठेयानि  
नियमेन कर्त्तव्यानीत्येतत् । नो इतराणि विपरीता-  
चार्यकृतान्यपि ।

कात्यायनधर्मशास्त्रे तृतीयखण्डे द्वितीया  
स्मृति — स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयञ्च यः ।  
कर्त्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघ तत् तस्य चेष्टितम् ॥

जैनसिद्धान्तरत्नार्थनिर्णयस्य च सम्यग् ज्ञान-  
चारित्र्य दर्शनार्थत्वात् तन्निर्णयेन स्वपक्षस्थापन प्रथम  
कृत तद्व्याभ्यर्हित परपक्षप्रत्याख्यानादिति । ननु  
मुमुक्षूणा मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्दर्शनादि निरूपणाय

पालन करना उचित है । अनग्रमतिका कहा भया विधि सबका  
पालन करना प्रयोजन नहि है । फेर कात्यायन धर्म शास्त्रका  
तृतीय खण्डके द्वितीय स्मृतिमेवि कहा है ।—यो मूढ निज  
शाखा कवित् कर्मो को परित्याग करने परशाखीक कर्म  
करने प्रमत्त होते है उनका सो कर्म फलजनक नहि होता है ।  
जैनसिद्धान्तरत्नका अथ निरूपण तत्वज्ञान, ओ है इम्के  
पहिले जिनसूत्रमे जैनसिद्धान्तरत्नका अथ निरूपण पूर्वक  
व्यवस्थापित हुया है । परपक्ष खण्डन मेति उनका घोषकता  
होने शक्त है । एइ परपक्ष खण्डनात्मक द्वितीयखण्ड आरम्भ  
करा याता है । यो कहो, मुक्तिका कारण बोलेके तत्वज्ञान  
निरूपण ओ तत्त्वज्ञान निरूपणके औयाम्ने स्वपक्ष स्थापन, ए दो

पानमेव केवलं कर्तुं युक्तं किं परपक्षनिर्ग-  
परविद्वेषकारणेन । वाढमेव तथापि महा-  
गृहीतानि महान्ति साख्यादितन्त्राणि  
र्शनापदेशेन प्रवृत्तानुपलम्भो भवेत् केपा-  
दसतीनामेतानापि सम्यग्दर्शनायोपादेयानौ-  
। तथा युक्तिगाढत्वसम्भवेन सर्वज्ञभाषित-  
श्रद्धा च तेष्वित्यतस्तदसारतोपपादनाय  
ते ॥ १ ॥

नसिद्धान्तरत्नविरुद्धस्मृतिप्रवर्त्तकः कपिलोद्द्विग्नि-

रना उचित है । श्रीमत्से परविद्वेषात्मकपरमत खण्डन  
का प्रयोजन ? इसलोक बोलते है कौ प्रयोजन है ।  
मतका अमारता देखा नहि प्रयोजन है । साख्यादि  
भि महत् है । देखने से आपात ज्ञानसे बोध होय,  
न गान्ध वडा बडा महर्षि कर्तृक रचित है श्री तत्त्वज्ञान  
रनाय प्रवृत्त । अज्ञानी लोक हठात मनसे कर्-  
तत्त्वज्ञान गिज्ञाने श्रियास्ते साख्यादि तन्त्र लेना चाहिये ।  
करके मन्त्र अपिन ऋषिका कथित श्री युक्तिपूर्ण बोलके  
दि शास्त्रमे लोको का अचल श्रद्धा हो गता । इस्यास्ते  
लोकोके हिताय श्री सकल शास्त्रका असारता देखाना  
पक्षमे यदा कारण उचित है ॥ १ ॥ ज्ञानसिद्धान्तरत्न विरुद्ध  
स्मृतिका चलाने श्रियाना कपिल और भरुदेवी नाभिरायका



वशजो जीवत्रिंशत् एव मायया विमोहितो न तु  
 मरुदेवास्तु नामेर्जातो ऋषभदेव । कपिलो ऋषभं  
 देवास्त्रा सांख्यतत्त्व जगाद् ह । ब्रह्मादिभ्यश्च देवेभ्यो  
 भृग्वादिभ्यस्तथैव च ॥ तथैवामुरये सर्वं वेदार्थं रूप-  
 ह हितम् । सर्व्वेदविरुद्धञ्च कपिलोऽनगो जगाद् ह ॥  
 साख्यमासुरयेऽनास्मै कुतर्कपरिहृ हितमिति स्मरणात् ।  
 तस्मात् भाष्यसारज्ञानसिद्धान्तरत्नविरुद्धतया नामाया  
 साख्यस्मृतेर्षार्थता न दीय । साख्यस्मृत्युक्ता-  
 नामर्थाना भाष्यसारज्ञानसिद्धान्तेऽनुपलम्भात्तस्या

पुत्र भगवान् कपिल एक नहि है । पहलेना कपिल अग्निवशज  
 मायामोहित था, दोसरा कपिल प्रजापति नाभिरायका पुत्र प्रथमा  
 यतार भगवान् श्रीऋषभदेव होते भये । सर्व्वज्ञ भगवान् ऋषभदेव,  
 प्रजापति नाभिरायके कपिलरूपमे अवतीर्ण हो कर साख्यशास्त्र  
 प्रचार कराते भये, छद्म ऐ साख्यतत्त्व ब्रह्मादि देवगण को भृगु  
 प्रभृति ऋषिगणको आसुरि नामक ब्राह्मण को उपदेश दिया था,  
 तदुक्त सांख्यस्मृति वेदाय द्वारा उपहृ हित । एव थोरभि एक कपिल  
 ये आसुरि ब्राह्मणको कुतर्क परिहृ हित स्वकापोलकल्पित अपर  
 साख्यका उपदेश किया था, इम्वास्ते, वेदविरुद्ध ऋषभ देवका  
 साख्यस्मृतिका व्यय बोलते निर्देश करनेसे कोइ दीप नहि ।  
 साख्यस्मृतिमें थैसा कितना एक विषय उक्त है । उहा  
 श्रीभगवान् ऋषभदेवोक्त भाष्यसार ज्ञानसिद्धान्तरत्नमे मिलता

नासत्वम् । ते च विभवश्चिन्मावा' पुरुषास्तेषा वन्ध-  
मोक्षौ प्रकृतिरेव करोति । तौ पुनः प्रकृताविव  
सर्त्रेश्वर. पुरुषविशेषो नास्ति । कालस्तत्त्वं न  
भवति । प्राणादयः पञ्चकरणवृत्तिरूपा भवन्तीत्येव-  
मादयस्तस्यामेव द्रष्टव्या ॥ २ ॥

तत्र साख्या मनन्ते यथा घटशरावादयोभेदा-  
मृदात्मतयाऽन्वीयमानामृदात्मकसामान्यपूर्विकालीके

नहि, इसि कारणसे उक्त साख्य श्रुतिका अनाम बोल्ना चाहिये,  
धोसका मत ए है पुरुष अर्थात् जीवात्मा सब चिन्मात्र वा विभु,  
प्रकृति हि उनी का वन्ध वा मोक्ष करना भोगानि है । वन्ध  
धौर मोक्ष ए दीनो प्रकृतिके अधीन है । प्राणादि पाचो इन्द्रिय  
का वृत्ति है इसिमाफिक औरभि कइ एक विषय ऐ साख्य  
श्रुतिमे देखनेमे आता है ॥ २ ॥ उसमे साख्यका मत इय इय कि  
ययसा घटओगेरे मट्टिका पदार्थ मे मट्टिका स्वरूपका अभ्यय रहनेके  
सबमे मट्टिइ उय जितिय सबो का कारण है । उसिमाफिक यो  
कुछ वाहियक और आन्तरिक भाव (पदार्थ) उयसव सुख दुःख धो  
मोहिरूप पक्षे लिस रहनेके सवमे सुख दुःख धौर मोहात्मक  
योइ एक सामान्य (जाति) और सबका कारण स्वरूप है ।  
योइ सुख दुःख मोहात्मक सामान्य पदार्थइ त्रिगुणान्वित आरओ  
मृत्तिका ओगेरेके तत्सरमे अधीतन पदार्थ है । लिकिन चेतन  
धौर चेतनपुरुषपदा (आत्माका) प्रयोजनके निरे और ध्वनिह

दृष्टा सर्व्व एव, वाङ्मयाध्यात्मिका भेदा सुखदुःख-  
मोहात्मतयाऽन्वीयमाना सुखदुःखमोहात्मकमामाना-  
पूर्व्विका भवितुमर्हन्ति । यत्तत् सुखदुःखमोहात्मकं  
मामाना तत्त्रिगुण प्रधान सृष्टदचेतन चेतनस्य  
पुरुषस्यार्थ साधयितु प्रवृत्त स्वभावभेदेनैव विचित्रेण  
विकारात्मना प्रवर्त्तत इति । तथा परिमाणादिभि  
रपि, लिङ्गैस्तदेव प्रधानमनुमिमते तत्र पदाम, यदि  
दृष्टान्तपलेनैव तन्निरूप्यते नाचेतन लोके चेतना-

विचित्रास्वभावके प्रभावसे नानाप्रकार आकार विकारसे परिनिमित्त  
होता है । परिमाण, प्रकृति बोधक हेतुसेभि उक्तिका (प्रकृतिका)  
अनुमान होने सगा है । इस मतके उपर हमलोक धोलते है  
कि साखर खालि दृष्टान्तमत अवनम्बन कारके जगतका कारण  
निरूपण करनके खास्ते प्रवृत्त हु ये है सत्य परन्तु उन चेतन  
कत्तू क अनधिष्ठित कीदू अचेतनकी विशिष्टपुरुषाय निर्वाह्यरूप  
विकार ( वस्तुभेद ) रचना करते भये देखा नहि है कारण  
अचेतनके कारणस्वरूप दृष्टान्त है नहि । घर, राजप्रासादादि  
विह्वधोना, आसन क्रीडाभूमि उगरे यो कुछ कुछ और दु ख  
प्राप्तिके परिहार, योग्य वस्तुभेद हय, उय सबइ बुद्धिमान कारि  
गरे के साहाय्यमे बनते देखा याता है लिखिय खालि पत्थर  
उगरे अचेतन चिजो के साहाय्य मे और सब चिजो का रचना  
होते नहि देखा याता है । इ टा पत्थर उगरे अचेतन पदार्थो

नधिष्ठितं स्वतन्त्र किञ्चिद्विगिष्टपुरुषार्थनिर्व्वर्त्तन-  
समर्थान् विकारान् विरचयत् दृष्टम् । गेऽप्रासाद्-  
शयनासनविहारभूम्यादयोहि लोके प्रज्ञावद्भिः शिल्पि-  
भिर्यथाकाल सुखदुःखप्राप्तिपरिहारयोग्या रचिता,  
दृश्यन्ते, तथेदं जगदखिल पृथिव्यादिनानाकर्म-  
फलोपभोगयोग्य बाह्यमाध्यात्मिकञ्च शरीरादिनाना-  
जात्यन्वित प्रतिनियतावयवविनाशमनेकाकर्मफला-  
नुभवाधिष्ठानं दृश्यमानं प्रज्ञावद्भिः सम्भाविततमै  
शिल्पिभिर्न्मनसाप्यालोचयितुमशक्यं सत् कथमचेतन  
प्रधानं रचयेत् लोष्ट्रपापाणद्विष्वदृष्टत्वात् ॥ ३ ॥

मृदादिष्वपि कुम्भकागदाधिष्ठितेषु विगिष्टा-

यव चेतनवस्तुके प्रेरणा छाडा घोडागाडि कुछ स्वाधीनभावसे  
रचना करनेमें समर्थ नहीं है, तब अचेतन प्रधान किमतथोरसे  
इस पृथिवी प्रकृति लोकादिका धोर उस्तिके बिचमें कर्मफल  
भागयोग्य नानाम्यान—वाह्य श्री आध्यात्मिक शरीर समूह—  
मनुष्यादि जातिकी असाधारणभावसे विनयस्त वा रचनाचातुरी  
सहित वर्त्तमान हरेकरकमके कर्मफल भोग करनेकी योग्य-  
स्थान बुद्धिमान कारिगरकेभि बुद्धिके अगोचर कल्पनाके बाहार  
असा अद्भुत जगत् कथेमें रचना करयले ? ॥ ३ ॥

इसके बारेमें इतनाहि देखनेसे आता है कि मट्टि उगरेके  
चिजो कुम्भार प्रकृतिके नाहायसे अधिष्ठित होके विविधप्रकारमें

कारा रचना दृश्यते, तद्वत् प्रधानस्यापि चेतनान्तरा-  
धिष्ठितत्वप्रसङ्गः । न च मृदाद्युपादानस्वरूप-  
व्याप्याश्रयेणैव धर्मैर्ण मूलकारणमवधारणीयं न बाह्य-  
कुम्भकारादिव्याप्याश्रयेणेति किञ्चित् नियामकमस्ति ।  
न चैव सति किञ्चिद्विरुध्यते प्रत्युत श्रुतिरनुगृह्यते  
चेतनकारणत्वममर्षणात् । अतीरचनानुपपत्तेश्च  
हेतीनांचेतन जगत्कारणमनुमातव्य ॥ ४ ॥

वन रहा है । इय दुष्टा उसे प्रधानकाभि कोइ एक चेतन  
अधिष्ठाता जरूर है असाहि अनुमान होने सके । असा कोइ  
नियामक नहि हय कि उसके मूलकारणसे मृत्तिकादि उपादान  
स्वरूपका अतिरिक्त धर्म रहना स्वीकार किया या सक्ता है औरभि  
कुम्भार प्रभृतिकी तरे सामान्य अधिष्ठाताकी परिहार किया या  
सक्ता है अथात् (मूल प्रकृतिमे अचेतनत्वधर्म विद्यमान है उसमे  
कोइतरेका सापेक्ष धर्म है नहि, मट्टि कुम्भारमे प्रयुक्त होकर  
घटादि भानाप्रकार आकारमे परिणत होता है, निकिन मूल  
प्रकृति यो उस नियमकी अधीन है ऐसावात बोलनेमे कोइभि  
समथ नहि है) निकिन अचेतन मात्रइ चेतनाधिष्ठित असा होनेसे  
सामान्य दोषभि नहि होता है इसिवास्ते चेतनका कारण समर्पण  
करणे सबसे घटका अनुकूल होया, अतएव अचेतन कारणपक्षमे  
विचित्रजगतकि रचना उपपन्न नहि होनेके सप्रसे अचेतन प्रधानइ  
जगतका कारण इय अनुमानमेभि थाने नहि सक्ता है ॥ ४ ॥

न केवल साखासिद्धान्ते चेन्नञ्च कैवल्यावस्थाया-  
मेवविधश्चिद्रूप यावद्दर्शनान्तरेऽपि विमृष्टप्रमाण-  
एवरूपोऽवतिष्ठते । तथाहि ससाग्दशायामात्मा  
कर्तृत्वभोक्तृत्वानुसन्धात्त्वमय' प्रतीयतेऽन्यथा  
यद्ययमेक चेन्नञ्चस्तथाविधो न स्यात् तदा  
ज्ञानक्षणानामेव पूर्वापरानुसन्धात्शून्यानामात्म-  
भावे नियत' कर्मफलसम्बन्धो न स्यात् कृत-  
हानाऽकृताभ्यागमप्रसङ्गश्च । यदि येनैव शास्त्रोपदिष्ट-  
मनुष्ठित कर्म तस्यैव भोक्तृत्व भवेत्तदा हिताहित-

आत्मानो है सो कवन्य अवस्थामे केवल आत्मतत्त्व दर्शन  
करके परितृप्त रहता है श्रीमा नहीं अनरऽभीसपूर्ण विषयभी  
दर्शन करता है । यव वह आत्मा ससागी था तव वह आत्मा  
हम कर्ता हम भोक्ता उर हम अनुसन्धाता इत्यादि रूपमे  
प्रीतिनाम करता आत्माका कर्तृत्व भोक्तृत्व स्वीकार नही  
करणेसे तिसके कर्मफलका सम्बन्ध कहा नही यासक्ता ।  
आत्माका कर्मसम्बन्ध स्वीकार नहीं करणेसे कृतकर्मका फल  
नाम नही हो सक्ता । धीसे भक्तकर्मके फलका आगम होने  
सक्ता है । यो शास्त्रोपदिष्ट कर्मका अनुष्ठान करताहे वही  
उन कर्मो गुष्ठानो का फल प्राप्त होता है यद्यवा भोग-करता  
है एद कारण हित उर अहित कर्मको प्राप्ति परिहारके वास्ते

प्राप्तिपरिहास्य सर्वस्य प्रवृत्तिर्घटेत सर्वस्यैव व्यव-  
हारस्य हानोपादानलक्षणस्यानुसन्धानेनैव प्राप्तत्वात्  
ज्ञानक्षणाणां परस्परभेदेनानुसन्धानशून्यत्वात् तदनु-  
सन्धानाभावे कस्यचिदपि व्यवहारानुपपत्तेः । कर्त्ता  
भोक्तानुसन्धाता य स आत्मेति व्यवस्थाप्यते । मोक्ष-  
दशायां तु सकलग्राह्यग्राहकलक्षणव्यवहाराभावात्  
चैतन्यमात्रमेव तस्य अवशिष्यते तत् चैतन्यं चित्ति-  
मात्रत्वेनैवोपपद्यते न पुनरात्मसंवेदनेन यस्मात्  
विषयग्रहणममर्धनमेव चित्तेरूपं नात्मग्राहकत्वम् ॥ ५ ॥

सबका प्रवृत्ति होता है जिम हेतुसेती सबप्रकार व्यवहारके  
कालेमे अनुसन्धानसेती ही ज कोन वस्तु होयहे वा कोन  
वस्तु ग्राह्य है उस्का निश्चय किया जाता है । अनुसन्धानके  
विगर किसीकाभी व्यवहार मिद होता नहीं । अनु-  
सन्धानसेती हीज जाता जाता है यो कर्त्ता यो भक्ता वा यो  
अनुसन्धाता वही आत्मा । किन्तु मुक्त होनेसे ग्राह्य ग्राहक  
व्यवहार रहता नहीं अर्थात् कोन वस्तु ग्राह्य है असे कोन ग्रहण  
करता है इन्को का इतरदिशिप रहता नहीं । केवल चैतन्यमात्र  
अवशिष्ट रहता है । एही चैतन्य चिच्छक्तिको ग्रहण करने  
सके आत्मसंवेदनके विषे उस्ता सामर्थ्य नहीं है । जिमहेतुसेती  
विषय ग्रहण का करण वणापणा वहा चिच्छक्ति है । उस्को आत्म  
ग्राहकता नहीं है ॥ ५ ॥

तथाहि अर्थश्चित्वा गृह्यमाणेऽयमिति गृह्यते  
स्वरूप गृह्यमाणमहमिति न पुनर्युगपद्वहिर्मुखता-  
नामुखतालक्षणव्यापारद्वय परस्परविरुद्ध कर्तुं शक्यम् ।  
अत एकस्मिन् समये व्यापारद्वयस्य कर्तुंमशक्यत्वात्  
चिद्रूपतयैवावशिपाते अतो मोक्षावस्थाया निवृत्ताधि-

ए विषय यो कहा है यो चिच्छक्ति है सो धर्ममात्रको  
ग्रहण करणे सके वही चिच्छक्तिका स्वरूप है । एक समयमें  
वहिर्मुखता उर अन्तर्मुखता ए व्यापारद्वय सम्भव होने सक्ता  
नही । जिस समयमें बाह्यवस्तुको ग्रहण करे उस समय  
आन्तरिक ज्ञान होने सक्ता नही जिस हेतुसेती वह दोनु  
कार्य परस्पर विरुद्ध है । इस हेतुसेती एक कालमें आन्त-  
रिक उर बाह्यज्ञान होने सक्ता नहीं, सुतरां वही चिन्मय  
पुरुष सत्व रज उर तम एही गुणत्रयरूप प्रकृतिके योगमें  
ससारी होयके विविध कर्म करके जसमेती ससारमें भावद  
होके रहता है । फेर नाना योनियोमें भ्रमण करते करते  
ममस्त उष्को को अनुभव करता है । ए ममस्त उक्त भोग  
असह्य होनेसेही आत्माको मुक्ति लाभके इच्छाकी उत्पत्ति  
होता है । तिससेती हीज आत्मा योगसाधनमें प्रवृत्त होता  
है । योगसाधन करके समाधि उपस्थित होनेसेही रज उर  
तमोगुण लय पायके सत्वगुण मात्र अवशिष्ट रहता है । फेर  
चिच्छक्तिमें वही सत्वगुणका लय होके वही चिच्छक्ति आत्माने



कारिणु गुणेषु चिन्मात्ररूप एवात्माऽवतिष्ठत इत्येवं  
 युक्तम् । ससारदशायान्वेव भूतस्यैव कर्तृत्व भोक्तृत्व-  
 मनुसन्धात्त्वञ्च सर्व्वमुपपद्यते । तथाहि योऽय प्रकृत्या  
 सहानादिनैसर्गिकोऽस्य भोग्यभोक्तृत्वलक्षणसस्वन्धो  
 ऽविवेकख्यातिमूलस्तस्मिन् सति पुरुषार्थकर्त्तव्यता-  
 रूपशक्तिद्वयसद्भावे या महदादिभावेन परिणतिस्तस्या  
 सयोगे सति यदात्मनोऽधिष्ठात्त्व चिच्छायासमर्पण-  
 सामर्थ्य बुद्धिसत्त्वस्य च सक्रान्तचिच्छायाग्रहण-  
 सामर्थ्यं चिदवष्टब्धायाश्च बुद्धेर्योऽय कर्त्तृत्वभोक्तृत्वा-

लयको प्राप्त होता है । इसरूपसे केवल चिन्मात्र पुरुष मात्र  
 अवशिष्ट रहता है तबही केवल्य अथात् मुक्ति होती है । उर  
 आत्मा जब प्रकृतिके वश होकरके ससारमें प्रविष्ट होता है ।  
 तब उसको हमही कर्त्ता हमही भोक्ता उर हमही अनुसन्धाता  
 असा ज्ञान रहता है । जिन हेतुसेती आत्माका ससारम प्रवेश  
 होनेसेही यही आत्मा प्रकृतिके सहयोगमें भोग्य वस्तुको को भोग  
 करता है । परन्तु अविवेक यो है वही स सारका मूलकारण है ।  
 ए अविवेक रहनेमें पुरुषका कर्त्तव्य साधनमें शक्ति रहनेमेंभी  
 अह कारादि प्रकाशमें परिणत होता है । वही परिणतिको  
 प्राप्त होनेसे आत्माका अधिष्ठाता प्रतीयमान होता है । वही  
 आत्माको शक्ति समर्पण करकेका सामर्थ्य है । यही चिच्छक्ति  
 करके अवष्टब् बुद्धिका जो कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि अध्यवसाय उसी

ध्वसायस्तत एव सर्वस्यानुसन्धानपूरकस्य वाव-  
हारस्य निष्पत्तेः किमनौ फल्युभिः कल्पनाजल्पैः ?  
यदि पुनरेव भूतमार्गवातिरेकेण पारमार्थिक सात्मन-  
कर्तृत्वाद्यङ्गीक्रियते तदस्य परिणामित्वप्रसङ्गः ।  
परिणामित्वाच्चानित्यत्वे तस्मादात्मत्वमेव न स्यात्  
यथाह्येकस्मिन्नेव समये एकैकैकरूपेण न परस्पर-  
विरुद्धावस्थानुभवः सम्भवति यथा वस्यामवस्थायामात्म-  
समवेते सुखे समुत्पन्ने तस्यानुभवित्वं न तस्यामेवा-  
वस्थायां दुःखानुभवित्वम् अतोऽवस्थानानात्वाच्च-

करकौ सर्वप्रकार व्यवहार मिद होने सक्ता है ए साख्यमतका  
सिद्धान्त है । हया अना अना कल्पनाका क्या प्रयोजन है ।

यदि एद्रूप पन्था स्वीकार नहीं, करकौ वास्तविक आत्माका  
कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अहंकार स्वीकार करो' तब आत्मा कुं  
परिणामी स्वीकार कारण होगी । परिणामी वस्तुमात्रही अनित्य  
है, सुतरां आत्मकु अनित्यत्व प्रतीयमान होता है । इसहे तुझे ती  
उस्को आत्मा कहा जाय नहीं । जैसे एक समयमें एकरूपमें  
परस्पर विरुद्ध अवस्थाका अनुभव होता नहीं जिस अवस्थामें  
आत्माको सुख उत्पन्न होता है उमी अवस्थामें वही सुख अनुभव  
होता है, कभी उस अवस्थामें दुःखका अनुभव होता नहीं ।  
इसहे तुझे ती अवस्था नानाप्रकारकी उत्पन्न जाइ, सुतरां यही

दभिन्नस्यावस्थावतो नानात्व नानात्वाच्च परिणामित्वा  
 न्नात्मत्वम् । नापि नित्यत्वमतएव शान्तब्रह्म  
 वादिभिः साङ्ख्यैरात्मनः सदैव ससारदशाया मोक्ष  
 दशायाञ्च एव रूपमङ्गीक्रियते ॥ ६ ॥

इति भाष्यसारजेनसिद्धान्तरद्वये द्वितीयखण्डे  
 सांख्यानिरासनामा प्रथम पादः ।

---

श्वस्य विगिष्ट वस्तु नाकारूप करको प्रतिघात होता है ।  
 यो वस्तु नानाप्रकारसे प्रतिपन्न ऊर्ध्व उसको श्वस्यही परि-  
 णामित्व है उस वस्तुका नित्यत्व नहीं । इस हेतुसेती शान्त  
 ब्रह्ममतवादि जो सांख्य नोग है वे ससार दशामें उर्ध्व मोक्ष  
 दशामें एही दोनु दशामें ही आत्माका एकरूप स्वीकार  
 करते हैं ॥ ६ ॥

इति भाष्यसारजेनसिद्धान्तरद्वये द्वितीयखण्डे  
 सांख्यानिरासनामक प्रथम पादः ।

---

## द्वितीय पाद ।

ये तु वेदान्तवादिनश्चिदानन्दमयत्वमात्मनो मोक्षमनान्ते तेषां न युक्तं पक्षः । तथाहि आनन्दस्य सुखस्वरूपत्वात्- सुखस्य च सदैव सवेद्यमानत्वैव प्रतिभासात् सवेद्यमानत्वञ्च सवेदनव्यतिरेकीयानुपपन्नमिति सवेद्यसंवेदनयोर्द्वयोरभ्युपगमात् अद्वैतज्ञानि । अथ सुखात्मकत्वमेव तस्योच्यते तद्विरुद्धधर्माध्यासादनुपपन्नं न हि सवेदनं सवेदाच्चैकं भवितुमर्हतीति । किञ्चाद्वैतवादिभिः कर्मात्मपरमात्मभेदेन आत्मा द्विविधः स्वीकृत इत्यञ्च तत्र येनैव रूपेण

यो सब वेदान्तवादी हैं वो लोक आत्माको चिदानन्दमयत्वरूप मोक्ष कहने हैं । वेदान्तियोंका ए मत समझत नहीं है, जिस हेतुसे आनन्द पदार्थ सुखस्वरूप है, वही सुख किसीको ज्ञेय बोलके प्रतीत होता है, कारण ज्ञाता विग्रह ज्ञेयत्व का सम्बन्ध नहीं होता है । एही समयमें आत्माको आनन्दमयरूप मुक्ति कहनेसे ज्ञाता ऊर ज्ञेय ए दीय पदार्थ स्वीकार करणे पडा । सुतरा अद्वैतका ज्ञानि हुवा । एद निमित्त वेदान्तियों का मत अयुक्त है । तत्र सुखात्मकत्वस्वरूप ही मोक्षका स्वरूपक है एही विरुद्धधर्मके अध्यासमें अनुपपन्न होता है, कभीभी ज्ञाता ऊर ज्ञेय ए एकरूप होने सक्त नहीं ।

सुखदुःखभोक्तृत्व कर्मात्मनस्तेनैव रूपेण यदि परमात्मन स्यात् तथा कर्मात्मवत् परमात्मन परिणामित्वमविद्यास्वभावत्वञ्च स्यात् । अथ न तस्य साक्षात् भोक्तृत्व किन्तु तदुपढौकितमुदासीन-तयाधिष्ठातृत्वेन स्वीकरोति तदास्मद्दर्शनानुप्रवेश आनन्दरूपता च पूर्वमेव निराकृता । किञ्च अविद्यास्वभावत्वे नि स्वभावत्वात् क शास्त्राधिकारी । न तावन्नित्यनिर्मुक्तत्वात् परमात्मा नापि अविद्या

अद्वैतवादी सत्र कर्मात्मा और परमात्मा ए दो प्रकार आत्मा स्वीकार करते है । ए दोनु आत्माको विषे जैसा कर्मात्माको सुख दुःख भोक्तृत्व है वैसेही परमात्माको सुख दुःख भोक्तृत्व स्वीकार करणसे कर्मात्मा की फेर परमात्माको भी परिणामित्व उर अविद्यास्वभावत्व स्वीकार करणा होगा । फलसेती परमात्माको साक्षात् भोक्तृत्व नही है, किन्तु कर्मात्मा अपना भोक्तृत्व परमात्माको उपढौकन स्वरूपसे प्रदान करता है । तिमसेतीभी परमात्मा उदासीन होके सर्वाधिष्ठातृत्व स्वीकार करता है, इससेती सुखस्वरूपको मोक्ष कहा जाता नहीं इस प्रकारसे आनन्दरूपता धौडवादके विष निराकृत भया है । कर्मात्मा अविद्या स्वभाव उर परमात्मा नि स्वभाव इसहेतुसेती शास्त्रका अधिकारी कोन होगा । परमात्माको नित्यनिर्मुक्त स्वभाव है इसहेतुसेती परमात्माको शास्त्राधिकारी कहा जाता

स्वभावत्वात् कर्मात्मा । ततश्च सकलशास्त्रवैयर्थ्य-  
प्रसङ्ग । अविद्यामयत्वे च जगतोऽङ्गीक्रियमाणे  
कस्याविद्येति विचार्यते । न तावत् परमात्मनो  
नित्यमुक्तत्वात् विद्यारूपत्वाच्च कर्मात्मनोऽपि  
परमार्थतो निःस्वभावतया शशविषाणप्रख्यत्वे  
कथमविद्यासम्बन्ध ? अथोच्यते एतदेवाविद्याया  
अविद्यात्व यद्विचारणीयत्वम् अविचरणीयत्व नाम  
यैर्व्यहिविचारेण दिनकरपृष्ठनीहारवत् विलयमुपयाति

नहीं एव कर्मात्माका अविद्या स्वभाव इसवास्ते तिस्रो भी  
शास्त्राधिकारिताका सम्भव है नहीं, सुतरा समस्त शास्त्रो का  
विफलता हुआ एव जगत्को अविद्यामय स्वीकार करणमे सो  
अविद्या किस्को है एभी विचारणयोग्य है जो तुम बोलोकि अविद्या  
परमात्माकाही स्वभाव है सोभी कहने नहीं सक्ते हो जिसयास्ते  
परमात्मा नित्यमुक्तस्वभाव है एर विद्यामय है । तयवही  
अविद्या कर्मात्माका स्वभाव कहें सोभी असम्भव है जिम  
है तुमैती कर्मात्मा वास्तविक नि स्वभाव, कभी अविद्या उम्का  
स्वभाव हो सक्ता नहीं । जैसे शशके शृङ्ग असम्भव है वैसेही  
नि स्वभावका अविद्या स्वभाव होने सके नहीं । अथ अविद्या  
अविद्याका स्वभाव कहने सके । इसमे कोइ प्रकारका ऊर  
विचार नहीं । इसमेती वेदान्त पक्षभी युक्त नहीं । जैसे  
सूर्यको किरण स्पर्शमात्रमे नीहार कण विलय प्राप्त होते है,

साऽविद्येतुच्यते । मैव यद्वस्तु किञ्चित् कार्यं करोति  
 तदवश्यं कुतश्चिद्भिन्नमभिन्नं वक्तव्यम् अविद्यायाश्च  
 ससारलक्षणकार्यकर्तृत्वमवश्यमङ्गीकर्तव्यं तस्मिन्  
 सत्यपि यदा निर्व्याचात्वमुच्यते तदा कस्यचिदपि  
 वाचात्वं न स्यात् ब्रह्मणोऽप्यवाचात्वप्रसक्तिस्तस्माद्-  
 धिष्ठातृत्वरूपव्यतिरेकेण नान्यदात्मनोरूपमुपपद्यते  
 अधिष्ठातृत्वं च चिद्रूपमेव तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मस्य  
 कस्यचित् प्रमाणानुपपत्ते ॥ १ ॥

इति भाष्यसारज्ञानसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
 साख्यानिरासनामा द्वितीय पादः ॥

वैशेषी ज्ञानके उदय होनेसे अविद्या विनय प्राप्त होता है ।  
 इत्यादि प्रकारसे वेदान्ती सब बहुतसे तक वितक किए हैं,  
 उम्का अनुवाद विशेष प्रयोजनीय नहीं है ॥ १ ॥

इति भाष्यसारज्ञानसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
 वेदान्तनिरासनामक द्वितीय पादः ॥

## तृतीय पादः ।

धैरपि नैयायिकादिभिरात्मा चेतनायोगाच्चेतन  
 इत्युच्यते चेतनापि तस्य मनःसयोगजा तथाहि  
 इच्छाज्ञानप्रयत्नादयो ये गुणास्तेषा व्यवहार-  
 दशायाम् आत्ममनसयोगादुत्पद्यन्ते तैरेव च गुणैः  
 स्वयं ज्ञाता कर्ता भोक्तेति व्यपदिश्यते मीक्षदशया  
 तु मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ तन्मूलाना दोषाणामपि  
 निवृत्तिस्तेषा बुद्ध्यादीना विशेषगुणानामत्यन्तोच्छ्रित्तिः  
 स्वरूपमात्र प्रतिष्ठितमात्मनोऽङ्गीकृत तेषामयुक्तः पक्षः ।  
 यतस्तस्या दशया नित्यत्वव्यापकत्वादयोगुणा आकाशा-

नैयायिक बोलते है यो आत्मा सचेतन नहीं है चेतना  
 संयोगसेती उसको सचेतनत्व है इसमेंती आत्माका मनसे  
 संयोग होनेसे इच्छा ज्ञान प्रयत्नादि व्यपदेश होता है । मोक्ष-  
 कालमें यो कर्तृत्वादि आत्माके यो गुण हैं उगे के व्यवहार कालमें  
 आत्ममनसयोग होनेसे आत्माका चैतन्य उत्पन्न होता है एव  
 वेही समस्त गुणद्वयको कर्तृत्व मोक्षत्व मिथ्या ज्ञानका निवृत्ति  
 होके सोइ मिथ्या ज्ञानका मूलभूत दोषो काभी निवृत्ति होता है ।  
 तबवेही समस्त बुद्धि प्रभृतिका विशेष गुणोका निवृत्ति होके  
 तबवेही आत्माका स्वरूप मात्र विद्यमान रहता है । नैयायिको



दीनामपि सन्ति अतस्तद्वैलक्षण्येनात्मनश्चिद्रूपत्व-  
मवश्यमङ्गीकार्यम् । आत्मत्वलक्षणजातियोग इति चेत्  
न सर्वस्यैव तज्जातियोग सम्भवति अतो जातिभ्यो  
वैलक्षण्यमात्मनोऽवश्यमङ्गीकर्तव्यं तस्याधिष्ठातृत्वं  
चिद्रूपतयैव घटते नान्यथा ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
न्यायनिरासनामा तृतीय पाद ॥

का ए मत्त युक्तियुक्त नहीं है जिससे तुमसे ती मोक्षदशामें नित्यव्यापक  
त्वादि गुण आकाशादिको केभी रहते हैं जिससे ती आत्माका  
कोइ विशेष गुण अवश्य स्वीकार करना होगा सोइ विशेष गुणही  
चिद्रूपत्व ए अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा नहीं तो नित्यत्व  
व्यापकत्वादि गुण आकाशादिको काभी है उनो को भी आत्मत्व  
होने सकता है । जो बोली केवल जातियोगसे केवल आत्माका  
विशेष गुण बोलके स्वीकार सोभी युक्तपक्ष नहीं करे, जातियोग  
साधारण पदार्थोमेभी है तिसमें आत्माका विशेष क्या हुआ ? इससे तुम  
आत्माका चिद्रूपत्व जर सब्वाधिष्ठातृत्व स्वीकार करना होय ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे

न्यायनिरासनामक तृतीय पाद ॥

चतुर्थः पादः ।

यैरपि मीमांसकैः कर्मकर्तृरूप आत्माहीक्रियते  
 तेषामपि न युक्तं पक्षः । तथाहि अहं प्रत्ययग्राह्य  
 आत्मेति तेषां प्रतिज्ञा अहंप्रत्यये च कर्तृत्व कर्मत्व-  
 स्वात्मन एव न चैतद्विरुद्धत्वादुपपद्यते कर्तृत्वं  
 प्रमादत्व कर्मत्वञ्च प्रमेयत्वं न चैतद्विरुद्धधर्माध्यासी  
 युगपदेकस्य घटते यद्विरुद्धधर्माध्यस्त न तदेकं यथा  
 भावाभावौ विरुद्धे च कर्तृत्वकर्मत्वे । अथोच्यते  
 न कर्तृत्वकर्मतयोर्विरोधः, किन्तु कर्तृकरणत्वयोः, केन  
 एतदुक्तं विरुद्धधर्माध्यसस्य तुल्यत्वात् कर्तृकरणतयो-  
 रैव विरोधः न कर्तृत्वकर्मत्वयोः । तस्मादाहप्रत्यय-

मीमांसक आत्माको कर्म कर्तृ रूप योनिके स्वीकार करते  
 है, योभी पक्ष युक्त नहीं । जिसहेतुसेती यो योलते हैं जो  
 आत्मा है सो अहं प्रत्ययग्राह्य है अर्थात् हम सर्वसमय ब्रह्म  
 है असा ज्ञानका गोचर । इसमे एक आत्माहीका कर्तृत्व उर  
 कर्मत्व जाना जाता है किन्तु उक्त धर्मद्वय परस्पर विरुद्ध है  
 अतः एक समयमें एक पदार्थमें रहते नहीं सक्ते । यो व्यक्ति

याह्यत् परिहृत्यात्मनोऽधिष्ठातृत्वमेवोपपन्नम् । तच्च  
चित्तनत्वमेव ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
मीमासानिरासनामा चतुर्थ पाद ॥

पञ्चम पाद ।

कैचित् विमर्षात्मकत्वेनात्मनश्चिन्मयत्वमिच्छन्ति ते  
ह्याहुर्नविमर्षव्यतिरेकेण चिद्रूपत्वात्मनो निरूपयितु  
शक्यं जगद्वैलक्षण्यमेव चिद्रूपत्वमुच्यते तच्च विमर्ष

ज्ञाता मो बोधी ज्ञेय श्रीसा ज्ञान होता नहीं एककान्तर्म,  
इमहेतुमेती आत्माको कर्तृकर्मरूप कहा जाय नहीं ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
मीमासानिरामनामक चतुर्थ पाद ॥

यो विमर्षात्मकत्व रूपम आत्माका चिन्मयत्व इच्छा करते हैं  
वो कहते हैं यो विमर्ष विगर आत्माका चिन्मयत्व रूप निरूपण  
किया जाय नहीं मो ए अयुक्त विमहेतुमे श्रीमाही है इत्यादि

व्यतिरेकेण निरूप्यमाण नान्यथावतिष्ठते । तद-  
नुपपन्नम् इदमिध्यमेवरूपमिति यो विचारः स  
विमर्ष इत्युच्यते स चास्मिताव्यतिरेकेण नोल्यानमेव  
लभते तथाहि आत्मन्युपजायमानो विमर्षोऽहमेवभूत  
इत्यनेन आकारेण सवेद्यते । ततश्चाहशब्दभिन्नस्य  
आत्मलक्षणास्य अर्थस्य तत्र स्फुरणान्न तत्र विकल्प-  
स्वरूपतातिक्रमः विकल्पश्चाध्यवसायात्मा बुद्धिधर्मी  
न चिद्धर्म कूटस्थनित्यत्वेन चित्ते सटेकरूपत्वात्  
नित्यत्वान्नाहङ्कारानुप्रवेशः । तदनेन स विमर्षत्व-  
मात्मन प्रतिपादयता बुद्धिरिवात्मत्वेन भ्रान्ता प्रति-  
पादिता न प्रकाशात्मनः परस्य पुरुषस्य स्वरूप-  
मवगतमिति ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
प्रत्यभिज्ञादर्शननिरामनामा पञ्चम पादः ॥

रूप विचारको विमर्ष कहते हैं अस्मिता विगर एव विमर्षका  
उत्पत्ति होने सके नहीं आत्मामें यो विमर्ष होता है यो हम्  
भेदे इत्यादि आकार करके जाना जाय सुतरा अह शब्द भिन्न  
आत्माको स्वरूपका स्फुरण होता नहीं ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे  
प्रत्यभिज्ञादर्शननिरामनामक पञ्चम पादः ॥

## षष्ठ पाद ।

इदानीं परमाणुकारणवादं निराकरोति । स च वाद इत्य समुत्तिष्ठति । पटादीनि हि लोके सावयवानि द्रव्याणि स्वानुगतै सयोगसचिवैस्तन्वादिभिर्द्रव्यैरारभ्यमाणानि दृष्टानि तत्सामान्येन यावत् किञ्चित् सावयव तत् सर्व्व स्वानुगतैरेव सयोगसचिवैस्तै स्तैर्द्रव्यैरारब्धमिति गम्यते । स चायमवयवावयविविभागो यतो निवर्त्तते सोऽपकर्षपर्य्यन्तगत परमाणु । सर्व्वञ्चैदं गिरिसमुद्रादिकां जगत् सावयवं सावयवत्वादादान्तवत् । नच कारणेन

अथ परमाणु कारण वाद निरस्त होगा । परमाणु वादका उक्त्या भ्रंसा है । लोकमें देखा जाता है वस्त्रादि सावयव द्रव्य सयोगके सहाय सूत्रादि द्रव्य करके उत्पन्न होता है । उसको साधारण पथमें ए जाना जाता है, यो कुछ सावयव समस्तही स्वानुगत सयोग सहकृत योही योही द्रव्यो करके उत्पन्न हुआ है । यन्त्र अवयवी, सूत्र उस्ता अवयव । सूत्र अवयवी अशु उस्ता अवयव । अशु अवयवी, तदग उस्ता अवयव । इस प्रकार अवयव अवयवी विभाग जिन जयगे समाप्त होय, जेप हय, जिस्ता उर विभाग भी वही सुद्रताका चूडान्त स्थान है दूसरे उसीका नाम परमाणु है । गिरि नदी समुद्रादि विशिष्ट एही विघ्न

कार्येण भवितव्यमित्यत परमाण्वो जगत कारण-  
मिति कणभूगभिप्राय । तानीमानि चत्वारि  
भूतानि भुम्यप्तेजःपवनाख्यानि सावयवानुपलभ्य  
चतुर्विधा. परमाण्व. परिकल्पन्ते तेषाञ्चापकर्ष-  
पर्यन्तगतत्वेन परतोविभागासम्भवाद्दिनश्रुता  
पृथिव्यादीनां परमाणुपर्यन्तोविभागो भवति स  
प्रलय काल । ततः सर्गकाले च वायवीयेष्वणुष्व-  
दृष्टापेक्ष कर्म उत्पद्यते । तत् कर्म स्वाश्रयमणु-

परमाणु समस्तही सावयव । जिसहे तुसे सावयव हे उसहे तुसे  
इस्का आदि अग्र हे । उत्पत्ति उर प्रलय दोनुही है । कार्य  
पर्यात् जन्य यस्तु भावइ सकारण है, विना कारणकोइ कार्य  
होता नही । उम्से जाना जाता है परमाणुराशिही जगत्का  
कारण है । ए कणाद मुनि कृत वैशेषिक दर्शनका मत है ।  
कणाद उरभी कल्पना करता है, पृथ्वी जन् तेज वायु ए चारो भूत  
सावयव हे सुतरा परमाणु चार प्रकार हैं भौम परमाणु जलीय  
परमाणु तेजस परमाणु उर वायवीय परमाणु । इम् परमाणुमें  
शुद्धताका विद्याति उर विभागका शेष है । इस्के आगे विभाग  
नही । इस कारणसेती विनश्रत् पृथिव्यादिको के विभागका  
सीमा परमाणु । जिसकालमें ए पृथिव्यादि चरम विभागमें  
विभक्त होय पर्यात् परमाणु हो जाय उसीको प्रलय कहते हैं ।  
प्रलयकालमें चरम अवयवी अस्त परमाणु रहते हैं तिनो का

मणुन्तरेण सयुनक्ति । ततोद्वागुकादिक्रमेण वायु-  
रुत्पद्यते । एवमग्निरेवमाप एव पृथिवीव शरीर-  
सेन्द्रियमित्येवं सर्वमिदं जगदगुभाः सम्भवति ।  
अणुगतेभ्यश्च रूपादिभ्योद्वागुकादिगतानि रूपादीनि  
सम्भवन्ति तन्नुपटन्यायेनेति कणादा मन्यन्ते । तत्रेद-  
मभिधीयते । विभागावस्थाया तावदगूनां संयोग  
कर्मापेक्षोऽभुपगन्तवाः कर्मवता तन्वादीना  
सयोगदर्शनात् । कर्मणश्च कार्यत्वात्त्रिमित्त

उर अवयव रहता नही । फेर यत्र सृष्टिकाल आता है तब  
अदृष्ट कारण प्रथम वायवीय परमाणु में क्रिया होता है यो यो  
वायवीय परमाणु क्रिया होती है, वही क्रिया वही वायवीय वही  
परमाणुको परस्पर सयुक्त करता है करके वायवीय द्रव्यक  
उत्पादन करे । क्रमसेती अणुक चतुरणुक इत्यादि क्रम  
करके वायुनाम महाभूत उत्पन्न होता है, इसी क्रमसे अग्नि  
जा पृथिवी सेन्द्रिय देह अधिक क्या समस्त विश्व उत्पन्न होता  
है । समस्त विश्वही अणुसे उत्पन्न होता है जिस अणुमें यो  
यो रूप उर रसादि क्या वही रूप उर वही रसादिसेतीही  
द्रव्यक रूपका उर द्रव्यक रसादिको का जन्म होता है । जैसे  
ध्वेत सूत्रसे ध्वेत वस्त्र उत्पन्न होता है, वैसेही कारण द्रव्यके  
रूपादिक सेतीही कार्य द्रव्यके रूपादि होते हो ए कणादके  
शिष्य मानते है । कणादके शिष्योके मत स्वीकार पर हम  
धैसा धोमने चाहते है कि विभागावस्थामें अवस्थित परमाणु

किमभुपगन्तव्य । अनभुपगमे निमित्ताभावात्  
 नागुष्वाद्य कर्म स्यात् । अभुपगमेऽपि यदि प्रयत्नी-  
 ऽभिघातादिर्वाह्यं किमपि कर्मणो निमित्तमभुप-  
 गम्येत तस्यासम्भवात् नैवागुष्वाद्य कर्म स्यात् ।  
 नहि तस्यासवस्थायामात्मगुणप्रयत्नः सम्भवति शरीरा-  
 भावात् । शरीरप्रतिष्ठेहि मनस्यात्मनः सयोगी

समूहको सयोगका वा प्रथम स योगका (यो जोड़ लागाना) क्रिया  
 सापेक्षता तुमको अवश्य स्वीकार्य है । किस्वावास्ते कि तुम  
 क्रियान्ति स्वको है सयुक्त होते देखा है, निष्क्रियका सयोग  
 देखा नहीं । क्रिया करके सयोग होता है अतएव सयोगका  
 निमित्त कारण क्रिया । ए नियम यो अवश्य स्वीकार्य होय,  
 तो एभी स्वीकार्य होयगा यो क्रिया जन्य पदार्थ (अर्थात् होता है)  
 यो लक्षके उक्ताभी को निमित्त (कारण) है । निमित्त अस्वीकार  
 करणसेही विना कारण कुछ होता नहीं, ए नियमके अनुरोधमें  
 परमाणुमें आव्य क्रियाका अभाव स्वीकार करणा हीगा । इसी  
 निमित्त (कारण) है अर्थात् मानो, वेसा होनेसे यो क्या प्रयत्न वा  
 अभिघात वा अदृष्ट ? इनो में क्या सो चीन्ना हीगा । इस  
 देखतेही उस समयमें इनो तिनोमें एक का असम्भव है । जिस  
 हेतुसे असम्भव वही हेतु परमाणुका प्रथम योग अस्ति ।  
 शरीर नहीं रहनेमें उससमय आत्माका गुण रहता नहीं ।  
 शरीरस्थ मनके साथ आत्माका सयोग न होनेसे, आत्मामें प्रयत्न



सत्यात्मगुण प्रयत्नो जायते एतेनाऽभिघातादापि  
दृष्ट निमित्तं प्रत्याख्यातवाम् । सर्गीतरकालं हि तत्  
सर्वं नादास्य कर्मणो निमित्तं सम्भवति । अथा  
दृष्टमादास्य कर्मणो निमित्तमित्युच्येत, तत् पुनरात्म-  
समवायि वा स्यादणुसमवायि वा । उभयथापि  
नादृष्टनिमित्तमणुपु कर्मावकल्पेत, अदृष्टस्याचेतन  
त्वात् । न ह्यचेतन चेतनानधिष्ठित स्वतन्त्रं  
प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयति वेति साखापरीक्षायामभिहितम् ।  
आत्मस्थानुत्पन्नचैतन्यस्य तस्यामवस्थायामचेतन-

गुण जन्मता नहीं । उससमयमें प्रयत्न गुण रहता नहीं, इस  
कहनेसे ही अभिघातादि कभी नहीं है एभी कहा गया ।  
प्रयत्न उर अभिघात प्रवृत्ति क्रियाके उत्पत्तिका कारण सत्य, परन्तु  
सृष्टिके पीछे । प्रथम क्रियामें उनी की कारणताका असम्भव  
है । किसवास्ते कि उससमयमें वो सब रहते नहीं । यदि  
अदृष्टकी ही आद्यक्रियाका कारण बोली तब अदृष्ट आत्म  
समवायी हो वो, उर परमाणु समवायी हो वो, दोनु प्रकारका  
कोइ प्रकार अदृष्ट अणुमें आद्यक्रिया उत्पादन करणें कु समय  
नहीं क्वावास्ते कि अदृष्ट अचेतन है जिसे चेतनाका अधिष्ठान  
नही तादृश कोइ अचेतन स्वत प्रवृत्त होता नहीं । इसारे  
किसीकी प्रवृत्त कराता नही, ए सांख्य मतके परीक्षामें प्रतिपन्न  
क्रिया हुवा है । आत्मामें चैतन्य गुण उत्पन्न न होनेसे उस

त्वात् । आत्मसमवायित्वाभ्युपगमाच्च नादृष्टमणुपु-  
 कर्मणो निमित्त स्यादसम्बन्धात् । अदृष्टवता  
 युक्तयेयातणूना सम्बन्ध इति चेत्, सम्बन्धस्य सातव्यात्  
 प्रवृत्तिसातत्यप्रसङ्गो नियामकान्तरभावात् । तदेवं  
 नियतस्य कस्यचित् कर्मनिमित्तस्याभावात् नाणुप्रादा  
 कर्म स्यात् । कर्मभावात् तन्निवन्धनः सयोग न  
 स्यात् संयोगाभावाच्च तन्निवन्धनद्वाराणांकादि कार्य्यजात  
 न स्यात् । सयोगश्चाणोरगदन्तरेण सर्व्यात्मना वा

अवस्थाम् आत्मा अचेतन रहता है । अदृष्ट आत्माहीमें रहता है,  
 कर जगे रहता नहीं । सुतरां परमाणुके साथ सम्बन्ध नहीं रहनेसे  
 वो प्राणविक्रियाका (अर्थात् परमाणु प्रचलनका) कारण होने सक्ता  
 नहीं । अदृष्टाधार आत्माके साथ उनो का सम्बन्ध है । आत्मा  
 सर्वज्ञापी इससे सम्बन्ध है अथवा बोलनेसेभी तुमारा अभीष्ट  
 पूर्ण होगा नहीं । सम्बन्ध स्वतही है सुतरां सतत सृष्टि  
 होनेकी आपत्ति होगी । प्रलयकालमें निष्क्रिय रहता है सृष्टि-  
 कालमें उनोमें क्रियारम्भ होता है । इस नियमका नियामक  
 वा कारण नहीं वा दिखाने न सकोगे । तब सृष्टिकालमें  
 परमाणुमें यो आवृत्तिया होगी, निष्क्रिय परमाणु यो सक्रिय  
 होगा, चलता रहेगा, उम्के प्रति कोई निमित्त वा कारण नहीं ।  
 निमित्त न रहनेसे क्रिया होगी नहीं । क्रिया न रहनेसे  
 अर्थात् परमाणु सकल सकल न होनेसे स योग होगा नहीं,

सप्तम' पाद ।

यदुक्तं ब्रह्मैव सर्वज्ञं जगतः कारणमिति तद-  
युक्तम् । कुत ? स्मृत्यनवकाशदोषप्रमद्वात् । स्मृतिश्च  
तन्वाख्या परमर्षिप्रणीता शिष्टपरिगृहीता, अन्याद्य-  
तदनुसारिणा स्मृतय एव सतानवकाशा

प्रत्यक्षा अभाव असा प्रसङ्ग होने सके । एय इस हेतुमेही  
परमाणु कारण वाद अनुपपन्न होय अर्थात् युक्तिमिउ योक्ति  
गण्य होता नहीं ॥ १ ॥

इति भाष्यसामञ्जेनमिदान्तरत्रे द्वितीयखण्डे

परमाणुकारणवादनिरासनामकं षष्ठं पादं ॥

वेदान्तमं कहा है सर्वज्ञ ब्रह्म जगतका कारणहै ए कथा  
अयुक्त है । कारण ब्रह्म कारणवाद स्वीकार करणमें स्मृति  
अनवकाश अर्थात् अप्रामाण्य दोष उपस्थित होय । कपिलके  
तन्वनमके विषे (अर्थात् साखरगान्धका अपर नाम पठितत्र)  
स्मृतिकारो के माना है । सुतरा सो प्रमाण है । पञ्चशिख्य  
प्रभृति कतिपय ऋषियो के स्मृतिभी कपिल स्मृतिके अनु-  
है । ब्रह्म कारण वाद स्वीकार करणमें दो मत्र स्मृतियों का  
स्थल रहता नहीं, सुतरा वोही सबका अन्वयक्य होय । मनु  
स्मृतिके प्रतिपाद्य भिन्न, सुतरा वोही स्मृतियों का अप्रामाण्य

प्रसज्येरन् । - तासु ह्यचेतन प्रधान स्वतन्त्र जगत  
कारणमुपनिबध्यते, मन्वादिस्मृतयस्तावच्चोदना-  
लक्षणेनाग्निहोत्रादिना धर्मजातेनापेक्षितमर्थ सम-  
र्पयन्त्याः सावकाशा भवन्ति । अस्य वर्गस्त्राग्निन्  
कालेऽनेन विधानेनोपनयनमीदृशश्चाचार इत्य  
वेदाध्ययनमित्य' समावर्त्तनमित्य सहधर्मचारिणी-  
सयोग इति । तथा पुरुषार्थाश्चतुर्वर्णाश्रमधर्मान्  
नानाविधान् विदधाति । नैव कपिलादि-  
स्मृतीनामनुष्ठेये । विषये अवकाशोऽस्ति । मोक्ष-

नहीं है अर्थात् उनमयो का आनयक्य होता नहीं । साख्यस्मृति  
स्वतन्त्र अचेतन प्रधानको जगत्का कारण कहते हैं । अचेतन  
प्रधानही साख्यस्मृतिका प्रतिपाद्य है किन्तु मन्वादि स्मृतिका  
प्रतिपाद्य धर्म । मनु प्रभृति ऋषि (विधिवाक्य बोधित वा वेद-  
वाक्यके अनुमेय) धर्म समूहका अर्थात् अग्निहोत्रादि यज्ञो का  
एव तदर्पेक्षित अन्न अन्न अनुष्ठानो का उपदेश किया है । अमुक  
वर्ण अमुक समयमें अमुक प्रकार करके उपनीत होगी । अमुक  
धर्मका अमुक आचार, अमुक प्रकार करके वेदाध्ययन । उर  
अमुक प्रकार करके समावर्त्तन करे । उर अमुक विधान  
करके द्वारा ग्रहण करणा । श्रीमा उपदेश किया है । चतुर्विध  
आश्रमका नानाप्रकार धर्म उर नानाप्रकार पुरुषार्थ समस्त उपदेश  
किया है । कपिल स्मृतिमें वो सब बात नहीं है । कपिलादि ऋषि

साधनमेव हि सम्यग्दर्शनमधिकृत्य ता प्रणीता ।  
 यदि तत्राप्यनवकाशा सुरानर्थक्यमेवासा प्रसज्येत ।  
 तस्मात्तदविरोधेन सिद्धान्तरत्ना व्याख्यातव्या । कथं  
 पुन ईक्षणेत्यादिभ्यो हेतुभ्यो ब्रह्मैव सर्व्वज्ञ जगत  
 कारणमित्यवधारित सिद्धान्तरत्नार्थं स्मृत्यनवकाश-  
 दोषप्रसङ्गेन पुनराक्षिप्यते । भवेद्यमनाक्षेप-  
 स्वतन्त्रप्रज्ञाना परतन्त्रप्रज्ञास्तु प्रायेण जना  
 स्वातन्त्र्येण सिद्धान्तरत्नार्थमवधारयितुमशक्नुवन्त

मोक्ष साधन उर तत्वज्ञान उद्देश करके स्मृति अन्य प्रणयन  
 किया है । यो श्रीमा स्मृति विषयशून्य वा स्थलशून्य होय  
 तो अवश्यही वो सब स्मृतियो निरर्थक या अप्रामाण्य बोल  
 करके गण्य होगी । (अभ्रान्त कपिल ऋषिकी स्मृति अथशून्य,  
 अप्रमाण ए कथा किसीकु भी स्वीकार करणे योग्य नहीं) ।  
 इस हेतुसेती स्मृति प्रामाण्य रखणिके वास्ते स्मृतिके अनुसार  
 सिद्धान्तरत्न व्याख्यान करणा उचित है । स्मृतिका स्थान  
 रहता नहीं, इस प्रसङ्गमें जरमी पूर्व्व पक्ष कारणे सके । उनो ने  
 देख वा धानोचना किया इत्यादि कथासे तुम किस्तरे जाना  
 कि सब्ब ब्र ईश्वर जगत्का कारण है उस कथाका वही अर्थ  
 श्रीमा तुम किस्तरे निश्चय करोगे ? अथात् जिनो का ज्ञान  
 अनाहत वा पश्चाहत वे स्वय सिद्धान्तरत्नका अर्थ जाने,—उनो के  
 निकट कोइ पुब्व पक्ष स्थान प्राप्त होता नहीं । किन्तु यो परतन्त्र

ख्यातप्रणेतृकासु स्मृतिष्ववलम्बेरन्, तद्वलेन च  
सिद्धान्तस्यार्थं प्रतिपित्सेरन् । अस्मत्कृते व्याख्यानं  
न विश्वस्युर्व्वहुमानात् स्मृतीनां प्रणेतृषु । कपिल-  
प्रभृतीनाञ्चार्थं ज्ञानमप्रतिहत स्मर्य्यते, श्रुतिश्च  
भवति “ऋषि प्रसूत कपिलं यस्तमये ज्ञानैर्व्वि-  
भक्तिं जायमानञ्च पश्येत्” इति । तस्मान्नैषा मत-  
मयथार्थं शक्य सम्भावयितुं, तर्कावष्टम्भेन च तैऽर्थं  
प्रतिष्ठापयन्ति, तस्मादपि स्मृतिवलेन सिद्धान्तस्य  
व्याख्याया इति पुनराक्षेपः । तस्य समाधिर्नाना-

है यो अपने ज्ञानमें सिद्धान्तसूत्रका अर्थ जानने को असमर्थ है  
जिनो का ज्ञान गुरु ऊर शास्त्रकी अपेक्षा रखे वे विख्यात  
ऋषि विख्यातको अन्य अवलम्बन करते है यो करके सिद्धान्तसूत्रका  
अर्थ निर्णय करते है सुतरा स्मृतिकारी का वचन विश्वासयोग्य है ।  
हमारे वचनमें विश्वास क्या ? कोन हमारे सिद्धान्तसूत्र व्याख्यानमें  
विश्वास करेगा । कपिलादि ऋषि अप्रतिहत ज्ञानीये, भैसे स्मृति  
कारोने कहा । उर श्रुतिमेंभी कहा । यथा यो देव ने प्रथम  
प्रसूत कपिलको जन्मतेही ऋषि अर्थात् मन्वार्य दृष्टा ऊर  
ज्ञानी किया है योही परमदेव ईश्वरको ज्ञान गोचर करेगा  
इसमेंतीई भैसे ऋषिका मत अयथार्थ ए सम्भव नहीं । अपिच,  
उनो का वचन आज्ञा वाक्य नहीं । उनो का समस्त मत तर्क  
परिष्कृत । इसी हेतुसेती यो से स्मृतिके अनुसार सिद्धान्त-

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गादिति । यदि स्मृता  
 नवकाशदोषप्रसङ्गेनेश्वरकारणवाद आक्षिप्येतैव  
 मध्यन्या ईश्वरकारणवादिन्य स्मृतयोऽनवकाशा,  
 प्रसजोरन् । ता उदाहरिष्याम । यत् तत् सूक्ष्म-  
 मविज्ञेयमिति परब्रह्म प्रकृत्य म ह्यन्तरात्मा भूताना  
 घेन्नज्ञयेति कथ्यत इति चोक्त्या तस्मादव्यक्तमुत्पन्न  
 त्रिगुण द्विजसत्तम इत्याह । तथानात्रापि अव्यक्त  
 पुरुषे ब्रह्मन् निर्गुणे सम्प्रलीयते इत्याह । अतश्च  
 सङ्क्षेपमिमं शृणुध्व नारायण, सर्व्वमिदं पुराण ।  
 स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च

रत्नका व्याख्यान करणा योग्य है, फेर भीसा पूर्व पक्ष उपस्थित  
 देखके उरुके समाधानके वास्ते चीलते है—एक स्मृतिका  
 अनवकाश (वा विषयाभाव) देखके ईश्वर कारणवाद नहीं अङ्गीकार  
 करणसे ईश्वरकारणवादिनी अनर स्मृतिका अनवकाश  
 (विषयाभाव) प्रयुक्त अप्रामाण्य होगा । यो मय समृति ईश्वर कारण  
 वादिनो है वोही सब स्मृतिया दिखाने जाता है वही यो दुखि न  
 सूक्ष्म वन् स्मृति भीसा परब्रह्मका प्रस्ताव करके पथात् वो प्राणी  
 सबका अन्तरात्मा वही क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव है भीसा उल्लिख ।  
 उपदेग करके वोर्न ह द्विजश्रेष्ठ उमीसे त्रिगुण अव्यक्त (अथात्  
 प्रधान) उत्पन्न हुवा है । उर जगेही कहा है यथा—हे ब्राह्मण  
 गुणातीत पुरुषसे नय प्राप्त होय । त्रिगुण ए स चित्त इति ज्ञान

तदस्ति भूय. इति । पुराणे । भगवद्गीता-  
 मुच—अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा इति  
 परमात्मानमेव च प्रकृत्यापस्तम्बः पठति—तस्मात्  
 काया प्रभवन्ति सर्वे स मूलं शाश्वतिकाः स नित्य  
 इति । एवमनेकशः स्मृतिष्वपीश्वरः कारणत्वे-  
 नोपादानत्वेन च प्रकाशयते । स्मृतिवलेन प्रत्यव-  
 तिष्ठमानस्य स्मृतिवलेनैवोत्तरं प्रवक्ष्यामि, इत्यतो-  
 ज्यमन्यस्मृत्यनवकाशदोषोपन्यासः । दर्शितन्तु

श्रुतौ । पुरातन नारायणही एहं समुदाय । एव वही  
 सृष्टिकालमें सृष्टि करता है । समारम्भकालमें आत्मसात्  
 करता है । पुराणमें इन्द्र ईश्वरका जगत्कारण कहके  
 बोली है । ए वात भगवद्गीतामेंभी है । हम मव  
 जगत्के उत्पत्ति प्रलयके कारण हैं । आपस्तम्ब मुनि  
 परमात्माका प्रस्ताव करके बोले हैं, ईश्वरमें चतुर्विध जीव देह  
 जन्म लेते हैं, वो ईश्वर इनसयोका मूल है, वो शाश्वत है नित्य है  
 ईश्वरही जगत्का उपादान कर निमित्त कारण है सो श्रीसा  
 भ सा वदत स्मृतिप्रोमे प्रकाशित है । यो केवल स्मृतियों का  
 प्रमलब्ध करके प्रत्यवधान करते है वा पृथ्व पक्ष करते है  
 उनों का स्मृतिका बल टिक्वाकोही प्रत्युत्तर देना उचित है  
 इस अभिप्रायमें जाना जाता है स्मृत्यन्तरका अनवकाश अर्थात्  
 विषयाभाव दोष होता है । फल ईश्वर कारणता पक्षमेंही यो



श्रुतीनामीश्वरकारणवादं प्रति तात्पर्यम् । वि-  
प्रतिपत्तौ च स्मृतौनामवश्यकर्त्तव्येऽन्यतरपरिग्रहे-  
ऽन्यतरस्यापरित्यागे च सिद्धान्तरत्नानुसारिण्य स्मृतयः  
प्रमाणमनपेक्षया इतराः । एतदुक्तं प्रमाणलक्षणे,  
विरोधेत्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम् इति । न  
चातीन्द्रियार्थान् सिद्धान्तरत्नमन्तरेण कश्चिदुपलभ्यते  
इति शक्यं सम्भावयितुं निमित्ताभावात् । शक्यं  
कपिलादीनां सिद्धानामप्रतिहतज्ञानत्वादिति चेत्,

वेदका तात्पर्यं है सो पूर्व प्रदर्शित हुवा है । जिस जगो समृतिमें  
विरोध है उस स्थानमें अवश्यही एक त्याज्य है उर अनपतर  
याह्य है कोनसी त्याज्य उर कोनसी याह्य इस्का मीमांसा  
एही यो हमारे सिद्धान्तरत्नके अनुगामिनी है वही याह्य है  
अन्य सकल अयाह्य । ए हमारे पूष्याचार्य्य जैमिनि मुनिनेभी  
कहा है । एहेतु विरोधके अभावस्थलमें अर्थात् सिद्धान्तरत्न विरुद्ध  
न होनेसे अनुमान अर्थात् समृति जर प्रत्यक्ष अर्थात् श्रुति परि-  
गृहीत न होने सके सिद्धान्तरत्न परित्याग करके कोइ कालमेंभी  
कोइ अतीन्द्रियाय अर्थात् यो चक्षुरादि इन्द्रियागोचर उस्को  
जाने सक्ता नहीं । एकमात्र सिद्धान्तरत्नही अतीन्द्रियार्थ ज्ञानका  
कारण है । उस्के अभावमें अतीन्द्रियाय ज्ञान होने सके नहीं ।  
कपिलादि ऋषि सिद्ध उनी का ज्ञान अनाहत अर्थात् अप्रतिहत  
उस्के वलसे वे वेदनिरपेक्ष होके अतीन्द्रियतत्त्वं जाने एक बात

न, सिद्धैरपि सापेक्षत्वात् । धर्मानुष्ठानापेक्षा हि सिद्धिः, सच धर्मश्रीदनालक्षणः, ततश्च पूर्वसिद्धाया-  
श्रीदनाया अर्थो न पश्चिमसिद्धपुरुषवचनवशेनाति-  
शङ्कितुं शक्यते । सिद्धव्यपाश्रयकल्पनायामपि  
बहुत्वात् सिद्धाना प्रदर्शितेन प्रकारेण स्मृतिवि-  
प्रतिपत्तौ सत्या न सिद्धान्तरत्नव्यपाश्रयादन्यत्  
निर्णयकारणमस्ति । परतन्त्रप्रज्ञस्यापि नाकस्मात्  
स्मृतिविशेषविषयः पक्षपातीयुक्तः । कस्यचित्  
क्वचित्तु पक्षपाते सति पुरुषमतिवैश्वरूप्येण तत्प्रा-

पोलने नहीं सकते हो । कारण सिद्धिभी धर्मसापेक्ष है  
धर्मानुष्ठान विगर सिद्धिभी होता नहीं धर्म है सो वेदमूल है ।  
प्रथमतो वेदका ज्ञान पावे वेदोक्त अर्थका अनुष्ठान उसके पावे  
सिद्धि है । सुतरा परमविक सिद्धपुरुषकी कथामें पूर्वमिद्ध  
वेदार्थका अनप्राया करणा अनप्राय्य है । सिद्धपुरुष अनेक है  
उनो की स्मृतियांभी अनेक है । सुतरा सिद्धपुरुषो की भिन्न भिन्न  
स्मृतिया परस्पर विरुद्ध होनेसे सिद्धान्तरत्नके आश्रय विगर की  
मव विरोध भन्जन वा अर्थ निर्णय होने सके नहीं । जिनो का  
ज्ञान परायत्त है । ऊर गुरु शास्त्रके अधीन है वे सब सहसा  
(बिनापूर्वक) स्मृति विशेषज्ञा निम्नित पदायके पक्षपाती  
होते हैं एभी अत्यन्त अनप्राय्य है । कोइ विषयमेंभी पक्षपाती  
होना अच्छा नहीं, पक्षपाती होनेसे तत्त व्यवस्था होता नहीं

व्यवस्थानप्रसङ्गात् । तस्मात्तस्यापि स्मृतिविप्रति-  
 पत्तुपन्यासेन सिद्धान्तरत्नसारानुसारविवेचनेन  
 च सन्मार्गे प्रज्ञा संयहणीया । यातु श्रुति कपिलस्य  
 ज्ञानातिशय प्रदर्शयन्ती प्रदर्शिता न तथा श्रुतिविरुद्ध  
 मपि कापिल मत श्रद्धातु शक्यं, कपिलमिति श्रुति  
 सामान्यमात्रत्वात् । अन्यस्य च कपिलस्य सगर-  
 पुत्राणां प्रतमुर्ध्वामुदेवनाम्न स्मरणात् ।  
 दर्शनस्य च प्राप्तिरहितस्यामाधकत्वात् ।  
 चान्या मनोर्माहात्म्य प्रख्यापयन्ति श्रुति, ५-

जिमहेतुमे मानयो की बुद्धि विचित्र है, सब  
 उसी हेतुमे स्मृतिके विरोध स्थानमें कोन स्मृति  
 कोन श्रुति श्रुतिविरोधिनी मो  
 पूर्वक बुद्धिको मत्पथगामिनी करणा  
 श्रुति कपिल महात्मा यणना किया है  
 कपिल मतमें श्रद्धा स्थापन करणा ५  
 शब्द सामान्यराची, ( कपिल  
 मां पर बोला है एव कोन कपिल  
 है उच्छ्वा प्रमाण क्या है ? ) श्रुति  
 यणना किया है सत्य 'किन्तु  
 नामक अनर कपिलका स्मरण ।  
 भेदज्ञानका उपदेश किया है ।

मनुरवदत् तद्गोपजमिति । मनुना च—सर्वभूतेषु  
 चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । समं पश्यन्नात्मयाजी  
 स्वराज्यमधिगच्छति । इति सर्वात्मत्वदर्शनं प्रशंसता  
 कापिलं मतं निन्द्यत इति गम्यते । तदेत्यमेवजातं  
 प्रतापचन्द्रप्रभृतिभिरहंन्यतानुसारिभिः प्रमेय-  
 कमलमार्त्तण्डादौ प्रबन्धे प्रपञ्चितमिति ग्रन्थभूय-  
 स्वभयान्नोपन्यस्तम् ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजेनसिद्धान्तग्रन्थे द्वितीयखण्डे  
 सर्वदर्शनविषयाभावनिरासनाय सप्तमं पादं ॥

कपिलको अतिशय ज्ञानी बोली है अतः श्रुति मनुमाहात्म्य  
 विस्तार किया है । एवं मनु सर्वात्मज्ञानका प्रशंसा उपलक्ष्य  
 कपिल मतका निन्दा किया है । अधिक विस्तारका प्रयोजन  
 क्या ? इसहे तुम अहंन्यतानुसारि प्रतापचन्द्र प्रभृतियो ने प्रमेय  
 कमलमार्त्तण्डादि प्रबन्धमें विस्तार किया है ॥ १ ॥

इति भाष्यसारजेनसिद्धान्तग्रन्थे द्वितीयखण्डे,  
 सर्वदर्शनविषयाभावनिरासनाय सप्तमं पादं ॥

## अष्टम पाद ।

तस्मात् पुरुषार्थाभिलाषुकैः पुरुषैः सर्वदर्शन  
मध्ये काचित् गतिर्नानुगन्तव्या अपित्वाहंत्वेवार्हणीया ।  
अर्हत्स्वरूपञ्च चन्द्रसूरिभिराप्तनिश्चयालङ्कारे निरु-  
गिडक सर्वज्ञोजितरागादिदीपस्त्रैः लोक्यपूजित ।  
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर इति ।  
ननु न कश्चित् पुरुषविशेष सर्वज्ञपदवेदनीय  
प्रमाणपङ्क्तिमध्यास्ते सद्भावग्राहकस्य प्रमाणपञ्चकस्य  
तत्रानुपलम्भात् तथा चीर्त्तं तौतातितैः —

यो धर्मार्थकाममोक्ष ए चार पुरुषार्थका अभिलाष कर्ते  
उनी को सकल दर्शनो के मध्यमें कोई दर्शन स्वीकार करणा  
योग्य नहीं किन्तु अहं मतही अङ्गीकार करणा योग्य है ।  
चन्द्रसूरि प्रकृति यथाय व्यक्ति उने बोही निश्चयालङ्कारके विषे  
निश्चित किया है । उनो ने कहा है अर्हन् देव सर्व ज्ञ उर  
उनी ने रागादि समूह जय किया है त्रिभुवनस्थ प्राणीगण  
उनी की पूजा करतेहै उर यथास्थितायवादी हैं साक्षात् परमेश्वर  
है । अब बोलते हैं कोई पुरुष सर्वज्ञ पद प्रतिपाद्य है इन्में  
कोई प्रमाण नहीं । जिसवास्ते जिस प्रमाण पञ्चकसे सद्भावका  
ज्ञान होय, वही प्रमाणपञ्चकसेती कोई पुरुषविशेषका सर्वज्ञ  
पद प्रतिपाद्यत्व उपनय होता नहीं । इस विषयमें शास्त्रान्तरमें

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः । दृष्टो  
 न चैकदेशोऽस्ति जिह्व वा योऽनुमापयेत् ॥ न चागम-  
 विधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः । न च तत्रार्थ-  
 वादाना तात्पर्यमपि कल्पते ॥ न चान्वयप्रधानै-  
 स्तैस्तदस्तित्व विधीयते । न चानुवदितुं शक्य-  
 पूर्वमन्यैर्बोधितः ॥ अनादिरागमस्यार्थो न च  
 सर्वज्ञ आदिमान् । कृत्रिममेगात्वसत्येन स कथं  
 प्रतिपाद्यते ॥ अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ।  
 प्रकल्पेन कथं सिद्धिरनोनाश्रययोस्तयोः ॥ सर्वज्ञो-

कहा है । हमर सवक्त किसीको भी सर्वज्ञ देखते नहीं छत्र  
 कभीभी भव्यज्ञका एक देश देखा नहीं परन्तु असा कोई  
 कारणभी नहीं है यो उससेती अनुमान करके सके । छत्र  
 सर्वज्ञ बोधक कोई आगमविधिभी नहीं अर्थात् कोई आगम  
 द्वाराभी प्रमाणीकृत होता नहीं । यो कोई पुरुष विशेषको  
 सर्वज्ञ कहने सके, परन्तु उक्त अर्थवादकाभी तात्पर्य परिकल्पना  
 होने सके नहीं । यो अनर्थ स्वीकार करे वोभी सर्वज्ञका  
 अस्तित्वविधान करे नहीं । एव पहली किसीने वो प्रतिपादन  
 किया है असाभी कोई बोलने सक्ता नहीं । अनादि आगमकाही  
 अर्थ हुवा है । एव सव्यज्ञ आदिमान नहीं है सुतरा कृत्रिम  
 असत्य प्रमाणमें बोधी सर्वज्ञ प्रतिपादित होने सके नहीं । यदि  
 वही वाक्यभातही अनन्य अनन्य व्यक्ति सर्वज्ञ बोलके जानने सके, तो

क्ततया वाक्य सत्यं तेन तदस्तिता । कथं तदुभयं  
 सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते ॥ असर्वज्ञप्रणीतास्तु  
 वचनान्मूलवनिर्जतात् । सर्वज्ञमवगच्छन्तस्तद्वाक्योक्त  
 न जानते ॥ सर्वज्ञसदृशं किञ्चिद् यदि पश्येम  
 सम्प्रति । उपमानेन सर्वज्ञ जानीयाम ततो  
 वयम् ॥ उपदेशोऽपि बुद्धादीना धर्माधर्मदिगोचर ।  
 अनथा नोपपद्येत सार्वज्ञा यदि नाभवदित्यादि ॥  
 अत्र प्रतिविधीयते यदभ्यधायिसद्भावग्राहकस्य

किस्तरे परस्पर आश्रयणीयका सिद्धि होने सके । “सर्वज्ञका  
 कथा वाक्यही सत्य है” इस प्रमाणमें सर्वज्ञका अस्तित्ता जाना  
 जाता है, किन्तु सिद्ध मूलोत्तर विगर किस्तरेमें उक्त उभयका  
 सिद्धि होने सके । ऊर यो असर्वज्ञ प्रणीत मूलवर्जित  
 वचनमें सर्वज्ञका स्वीकार करते है वे सब उनो की वाक्योक्ति  
 जानने नहीं, अथात् जिस वाक्यका कोई मूल नहीं, उस वाक्यमें  
 सर्वज्ञ स्वीकृत होते सकता नहीं । यदि सम्प्रति कोई पदार्थ  
 सर्वज्ञके सदृश देखने पावे, तो इस उपमान प्रमाणमेंभी सर्वज्ञ  
 जान सके, अथात् एवस्तु सर्वज्ञके सदृश है, घीसा देखे तो  
 सर्वज्ञका उपमान प्रमाणसे अस्तित्ता स्वीकार करें यदि  
 सर्वज्ञत्वही नहीं है, तो अनर कोई रूपमें धर्माधर्म गोचर  
 बुद्धादि सुनिगणो का उपदेश मित्र होने सके नहीं । सर्वज्ञ  
 भिय ऊर कोई व्यक्ति धर्माधर्मका उपदेश करणे समथ होय ।

प्रमाणपञ्चकस्य तन्नानुपलम्भादिति तदयुक्तं तत्  
सद्भावादिकस्यानुमानादे सद्भावात् । तथाहि कश्चि-  
दात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहणस्वभावत्वे  
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्यय तत् तत्साक्षात्कारि  
यथा अपगततिमिरादिप्रतिबन्ध रूपसाक्षात्कारि ।  
तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च  
कश्चिदात्मा तस्मात् सकलपदार्थसाक्षात्कारीति न  
तावदशेषार्थग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्ध चोदना-

पृथोक्तं प्रस्तावका समाधान । पृथ्व कहा है—सद्भाव प्रमाण  
पञ्चककी अनुपलब्धि हेतुक कोइ पुरुष सर्वज्ञ पद प्रतिपाद्य  
होने सके नहीं ए युक्त नहीं । कारण एक अनुमान प्रमाण  
मेही मर्त्यदका प्रतीति होता है । इस दृष्टमें जैसे अनुमान  
होता है यो कोइ एक आत्मा सकल पदार्थ साक्षात्कारी है  
जिम हेतुमती आत्माका सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण करणिका सामर्थ्य  
है एव उम्को सकल प्रतिबन्धक क्षयप्राप्त हुए हैं अर्थात् आत्माकी  
कोइ प्रतिबन्धक नहीं, ऊर इम्मे असा व्याप्ति स्थिर है यो यो  
पदार्थ ग्रहणस्वभावगाली क्षीण डाल प्रतिबन्धक हीय वीही  
पदार्थही साक्षात् करण सके, वीही जेमे अन्धकारादि प्रतिबन्धक  
अपगत होनेमेही चक्षु रूपका साक्षात् करती है । कोइ  
आत्माभी वस्तु सभाव साक्षात्कारगाली ज्ञाने प्रतिबन्धकही न  
हजे सके । इम हेतुमती वही आत्माही सकल पदार्थ साक्षात्



वल्गान्निखिलार्थज्ञानात् नानाधानुपपत्त्यासर्व्वमनै  
 कान्तात्मकं सत्त्वादिति व्याप्तिज्ञानोत्पत्तेश्च ।  
 चोदनाहि भूतं भवन्त भविष्यन्त सूक्ष्म व्यवहित  
 विप्रकृष्टमित्येवं जातीयकमर्थमवगमयतीत्येवं जातीय  
 कैरध्वरमीमासा गुरुभिर्विधिप्रतिषेधविचारणा  
 निवन्धन सकलार्थविषयज्ञान प्रतिपद्यमानै  
 सकलार्थग्रहणस्वभावकत्वमात्मनोऽभ्युपगतम् । न  
 चाखिलार्थप्रतिवन्धकारणप्रक्षयानुपपत्ति सम्यग्दर्श  
 नादित्रयलक्षणस्यावरणप्रक्षयहेतुभूतस्य सामयी-  
 विशेषस्य प्रतीतत्वात् अनया मुद्रयापि क्षुद्रोपद्रवा-

कारी । वस्तुतस्तु सेती आत्माका समस्तार्थ ग्रहण स्वभाव असिद्ध  
 नहीं है । जिस हेतुसेती चोदना वनसेती निखिलार्थ ज्ञान  
 प्रयुक्त अनर कोन रूपमेंभी उपपत्ति नहीं, आत्माका चोदनाही  
 अतीत वर्त्तमान भविष्यत् विषय समस्त जैसे सूक्ष्म व्यवहित  
 विप्रकृष्ट प्रभृति पदार्थाका ज्ञान करती है । इससेती यो अध्वर  
 मीमांसाके गुरुभी एवविधि उर प्रतिषेध विचार निवन्धन सकलाय  
 विज्ञान प्रतिपादन करते हैं, वेभी आत्माका सकलार्थ ग्रहण  
 स्वभाव स्वीकार करते हैं आत्मा यो सकलार्थ ग्रहण करणे मके,  
 उर प्रतिवन्धकस्वरूप आवरण क्षयकाभी अनुपपत्ति नहीं  
 है, जिस हेतुसे सम्यग्दर्शनादि लक्षण एव आवरणक्षयका  
 हेतुभूत सामयीविशेष प्रतीत है । उर आवरणक्षयसेती समस्त

धिद्रव्या' । नन्वावरणप्रक्षयवशाद्गोपत्रिपयं विज्ञान-  
विगद मुख्यप्रत्यक्ष प्रभवतीत्युक्तं तदयुक्तं तस्य सर्वज्ञ-  
स्यानादिसत्त्वत्वेनावरणस्यैवासम्भवादिति चेत्तन्न  
अनादिमुक्तत्वस्यैवासिद्धिर्न सर्वज्ञोऽनादिमुक्तः मुक्तत्वा-  
दितरमुक्तवत् वक्ष्यापेक्षया च मुक्तव्यपदेशः तद्वृत्तित्वा-  
स्याप्यभावः स्यादाकाशवत् । नन्वनादेः चित्वादि-  
कार्यपरम्परायाः कर्तृत्वेन तत्सिद्धिः तथाहि ।  
चित्वादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद्दृष्टवदिति तदप्यसमी-  
चीनं कार्यत्वस्यैवासिद्धिः । न च सावयवत्वेन  
तत्साधनमित्यभिधातव्यं यस्मादिदं प्रिकल्पजालमव-

त्रिपय प्रत्यक्ष होते हैं एभी कहा है किन्तु एभी युक्तियुक्त नहीं ।  
कारण सर्वज्ञ आत्मा अनादि उर अनन्त, उस्को कोइ रूप  
आवरण सम्भव होता नहीं । एभी बोला जाय नहीं, जिम  
है तुमसे अनादिको भी मुक्तत्वका अभिधि है । इतरमुक्तकी परे  
सर्वज्ञ अनादि मुक्त नहीं । यस्की अपेक्षाही मुक्तका व्यपदेश  
होता है । जिसको बन्ध नहीं उस्को मुक्त कहा जाय नहीं ।  
अब यो बने, सर्वज्ञ अनादि होनेसेभी चित्वादि कार्य पदाय  
समूहका कर्तृत्व प्रयुक्त उस्को मुक्तत्वकी मिधि है, पृथिव्यादि  
पदार्थ समस्तही सकर्तृक, जिमहै तुमसे घटादिककी परे कार्य  
रूप होनेसे, एभी समीचीन नहीं है । जिससेती कार्यत्वका  
ही अभिधि है । सावयवत्व प्रयुक्त मुक्तत्वकी मिधि है, एभी

तरति । सावयवत्व किमवयवसयोगित्वम् अवयव  
समवायित्वम् अवयवजन्यत्व समवेतद्रव्यत्व  
सावयवबुद्धिविषयत्व वा ? न प्रथम आकाशादाव-  
नैकान्तात् । न द्वितीय सामन्यादौ व्यभि-  
चारात् । न तृतीय साध्याविशिष्टत्वात् । न  
चतुर्थ विकल्पयुगलार्गलगत्तग्रहत्वात् । समवाय

कहा जाय नहीं, जिमहेतुसेती सन्वय आत्मा विकल्पज्ञानमे  
उत्तीर्ण है । अब प्रायश्चा होता है, यो सावयवत्व ह सो  
क्या अवयवसयोगित्व है वा अवयवसमवायित्व है वा अवयव  
जन्यत्व है वा समवेतद्रव्यत्व अथवा सावयवबुद्धिविषयत्व ?  
प्रथम यो अवयवसयोगित्व सो होने सके नहीं । अवयव  
सयोगित्व होनेसे, आकाशादिकके विषे अनैकान्तत्वरूप दूषण  
उपस्थित होता है । आकाश नित्य पदार्थ वो किस्तरे कार्यरूप  
हो सके ? द्वितीय अवयवसमवायित्व एभी होने सके नहीं ।  
उस्तरे होनेसे जाति प्रभृतिमें व्यभिचार होय । अर्थात् जाति  
प्रभृतिभी नित्य पदार्थ सुतरां वोभी किस्तरे कार्य होने सके ?  
तृतीय अवयवजन्यत्वभी होने सके नहीं । उस्तरे होनेसे साध्या  
अवशिष्टत्व होने सके । अर्थात् ईश्वर निरवयव । ईश्वरसेती  
अवयवी पदार्थका किस्तरे आविभाव होने सके ? चतुर्थ समवेत  
द्रव्यत्वभी होने सके नहीं । समवेतद्रव्यत्व बोलनेसे दोय मन्टेण  
रूप अगल गन्धग्रह होने सके, प्रथम समवायसम्बन्धमात्रवत् द्रव्यत्व

सम्बन्धमात्रवद्द्रव्यत्व' समवेतद्रव्यत्व अन्यत्र  
 समवेतद्रव्यत्व' वा विवक्षित हेतु. क्रियते । आद्ये  
 गगनादौ व्यभिचार तस्यापि गुणादिसमवायत्व-  
 द्रव्यत्वयो. सम्भवात् । द्वितीये साध्याविशिष्टता  
 अन्यशब्दार्थेषु समवायिकारणभूतैष्ववयवेषु समवायस्य  
 साधनीयत्वात् । अभ्युपगमैतदभानि वस्तुतस्तु  
 समवाय एव न समस्ति प्रमाणाभावात् । नापि पञ्चम.  
 आत्मादिनानैकान्तात्तस्य सावयवबुद्धिविषयत्वेऽपि  
 कार्यत्वाभावात् । न च निरवयवत्वेऽप्यस्य सावयवार्थ-

ही क्या समवेतद्रव्यत्व या ? ऊर जगें समवेत द्रव्यकी ही समवेत  
 द्रव्यत्व बोला गया है । अंसा हेतु उपनगस्त होने सके । आद्य  
 पयात् समवायसम्बन्धमात्रवत् द्रव्यत्व कहनेसे आकाशादिकके  
 व्यभिचार होता है । आकाशके गुणादि समवायतु उर द्रव्यत्व ए  
 दोतु ही है दुमरा योननेसे, साध्यका अवशिष्टता होय । किस्वास्ते  
 समवायके कारणभूत अवयव समूहको विषे समवायका साधनीयत्व  
 होने सके येही मय स्वीकार करके कहा हुवा है । वस्तुत  
 समवायही नहीं । किमवास्ते कि इस्के अस्तितामें कोई  
 प्रमाण नहीं । पञ्चम अर्थात् सावयवबुद्धिविषयत्वभी होने सके  
 नहीं, उस्तरे होनेसे, आकादिकके साथ अनैकान्तिवात्व होने  
 सके । पधान्तरके विषे आकाको सावयव बुद्धि विषय बोझके  
 स्वीकार करखेसेभी, वो कभी कार्य होने सके नहीं । आत्मा

सम्बन्धेन सावयवबुद्धिविषयत्वमौपचारिकमित्येष्टव्य  
 निरवयवत्वे व्यापित्वविरोधात् परमाणुवत् । किञ्च  
 किमेक कर्त्ता साध्यते किवा स्वतन्त्र ? प्रथमे  
 प्रासादादौ व्यभिचार स्थपत्यादीना वह्नना पुरुपाणा  
 तत्र कर्त्तृत्वोपलम्भादनेनैव सकलजगज्जननोत्पत्ता-  
 वितरत्रैयर्थाञ्च । तदुक्तं वीतरागस्तुतौ—कर्त्तास्ति नित्यो  
 जगतः स चैकः स सर्व्वगः स स्ववशः स सत्यः । इमा  
 कुहेया कुविडम्बना स्युन्तेषा न येषामनुशासकत्व  
 मिति । अन्यत्रापि—कर्त्ता न तावदिह कोऽपि,

निरवयव होनेसे भी देहके साथ सम्बन्ध प्रथमे ती उक्तो सावयव  
 बुद्धि विषयत्व औपचारिक, जैसे भी दृष्ट होने सके नहीं ।  
 किसवास्तो कि, निरवयव पदार्थमात्रहीं परमाणुकी परे  
 व्याप्यत्व विरोधी हैं । जरभी कर्त्ता एकमात्र कि स्वतन्त्र कर्त्ता  
 हैं ? यो एकमात्र कर्त्ता स्वीकार किया जाय, तो प्रासादादिको के  
 विषे व्यभिचार घटे । वह स्थपति पुरुष एकत्र होके प्रासादादि  
 निर्माण करते हैं । इस्कारके अर्थात् एकमात्र कर्त्ता स्वीकार  
 करणसे समस्या लोकको उत्पत्ति विषये अनन्तर अनन्तर कर्त्तृ गणो का  
 वेयर्थ्य होगा । वीतराग स्तुतिके विषे कहा है । यथा—जगत्का  
 यो कर्त्ता, यो नित्य जर एक है । जैसे यो सर्व्वव्यापी जर  
 स्ववश सत्यस्वरूप हैं । जैसे यो स्वीकार किया जाय तो  
 अनन्तर अनन्तर कर्त्तृ गणो का अनुशासकत्व नहीं, उनो की विडम्बना

यथेच्छया वा दृष्टो अन्यथा घटकृतावपि, तव्यसह' ।  
 कार्यं किमत्र भवतापि च तत्रकाद्यैराहता, च  
 त्रिभुवनं पुरुष' करोतीति । तस्मात् प्रागुक्तकारण-  
 त्रितयवलादावरणप्रक्षये सार्वज्ञ्यं युक्तम् । न चा-  
 'स्योपदेष्टृन्तराभावात् सम्यग्दर्शनादित्रितयानुपपत्ति-  
 रिति मननीयं पूर्वं<sup>६</sup> सार्वज्ञ्यप्रणीतागमप्रभवत्वा-  
 दमुपाशेषार्थज्ञानस्य । न चान्योन्याश्रयतादि-  
 दोष आगमसार्वज्ञ्यपरम्पराया वीजाङ्कुरवदना-  
 दित्वङ्गीकारादित्यलम् ॥ १ ॥

होय । जर जगिभी कइवा है, इस सभारका यथेच्छ कोइ कर्ता  
 नहीं किसवास्ते कि कुम्भकारके कार्यमें उस्के प्रसन्नका अनया  
 भाव देखा जाता है । जर पुरुष क्या तुमारेको जर सुख-  
 धरादिकी को एकत्र समवेत करके, एइ त्रिभुवनका सृष्टि  
 किया है ? इस कारणसे पूर्वोक्त कारणत्रयके प्रभावमें आवरणका  
 एक कालीन छय होनेसे, जीवका सार्वज्ञता युक्त होती है । इस  
 जीवका अनय कोइ उपदेष्टा नहीं । सुतरा उस्को सम्यग्दर्श-  
 नादित्रितयकी अनुपपत्ति होय सके अेसामी बोला जाय नहीं ।  
 यो यो जीव प्रथमचरणमें सार्वज्ञ हुये उनी के कहैभए आगमो'  
 सेती इस्का अेसा सार्वज्ञत्व ममुद्भूत हुवा है । इस विषयमें  
 अनोन्याश्रयतादिदोष होने सकते नहीं । वीजाङ्कुरकी परे आगम  
 जर सार्वज्ञ परम्परा अनादि बोलके परिगृहीत होती है ॥ १ ॥

रत्नत्रयपदवेदनीयतया प्रसिद्ध सम्यग्दर्शना  
 द्विचितयमर्हत्प्रवचनसग्रहपरे परमागमसारे  
 प्ररूपितं , सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि- मोक्षमार्ग  
 इति । विद्वत्तस्य योगदेवेन येन रूपेण जीवाद्यर्थी  
 वावस्थितस्तेन रूपेणार्हता प्रतिपादिते तत्त्वार्थे  
 विपरीताभिनिवेशरहितत्वाद्यपरपथ्याय अज्ञानं  
 सम्यग्दर्शनमिति । तथा च तत्त्वार्थसूत्रं—तत्त्वार्थ  
 अज्ञानं सम्यग्दर्शनमिति । अनादपि रुचिर्जिनोक्ता-  
 तत्त्वेषु समाक्ष्यज्ञानमुच्यते । जायते तन्निर्गम्य  
 गुरोरधिगमेन वेति । परोपदेशनिरपेक्षमात्मस्वरूप

यो समग्रदय भाद्विचितयरत्नत्रयपदवेदनीय यो लके प्रसिद्धि  
 है यो अर्हत्प्रवचनस ग्रहविषयक परमागमसार सम्यक्के विषे विषेय  
 रूप करके विद्वत् हुइ है । उक्तो निष्ठा है, समग्रदय न ज्ञान उर  
 चारित्र एही तिन साक्षात् मोक्षमार्ग है । योगदेव कर्त्तृक एभी  
 विद्वत् हुवा है, यो जिसरूपमें जीवादि सकल विषयका व्यवस्थापना  
 करा है, अहंत् कर्त्तृक उभीरूप तत्त्वार्थ प्रतिपादित हुवा है ।  
 उस तत्त्वार्थमें विपरीत अभिनिवेश त्यागादिपुष्पक अज्ञानको  
 समग्रदर्शन कहा है । तथाहि तत्त्वार्थ सूत्र । तत्त्वार्थअज्ञानं  
 समग्रदर्शन । उर रूपभी कहा है यथा—जिन जिने ने तत्व  
 निर्देश किया है उक्तो यो समग्र रुचि उक्तो ही अज्ञान  
 कहा है । निरग-एव गुरुका अधिगम एही दोनुपायमे

निसर्गः । ध्याख्यानादिरूपपरोपदेशजनित ज्ञानमधि-  
 गमः । येन स्वभावेन जीवाद्यः पदार्थाः वावस्थिताः  
 तेन स्वभावेन मोहसंशयरहितत्वनावगमः समाग्-  
 ज्ञानम् । यथोक्त—यथावस्थिततत्त्वानां सचेपाद्  
 विस्तरेण वा । योऽवबोधस्तमत्राहुः, समाग्ज्ञान  
 मनीषिण इति ॥ तज्ज्ञानं पञ्चविध, मतिश्रुतावधि-  
 मनःपर्यायकेवलभेदेन । तदुक्तं—मतिश्रुतावधिमन-  
 पर्यायकेवलानि ज्ञानमिति । अस्वार्थः—ज्ञाना-  
 वरणक्षयोपशमे सति इन्द्रियमनसी पुरस्कृत्य व्यापृतं  
 मन यथार्थं मनुते सा मति । ज्ञानावरणक्षयोपशमे

ममुद्भूत होता है । उन्हीं परोपदेश निरपेक्षे यो आत्मस्वरूप  
 उन्को निसर्ग कहते हैं । जो ध्याख्यानादिरूप परोपदेश  
 जनित ज्ञानका नाम अधिगम । एव जिस स्वभाव करके  
 जीवादि समस्त पदार्थ रहे हैं, उन्ही स्वभावसे ही मोहादिरहित  
 यो अवगम होय, उन्को समाग ज्ञान कहते हैं । तथाहि कहा  
 है यथा, यथावस्थित सर्वतत्त्वों का सङ्क्षेप वा विस्तारसे ही  
 यो अवबोध अर्थात् परिज्ञान उन्को मनीषिण समाग् ज्ञान  
 निर्देश करते हैं । जो ज्ञान ५ प्रकार—मति १ श्रुति २ अधि ३  
 मन पर्याय ४ उर केवल ५ । उन्को ज्ञानावरणका अधिक क्षय  
 होनेसे मन यो यथार्थ मनन करे उन्को मति कहते हैं ।  
 ज्ञानावरणके 'क्षयोपशम होनेसे', मतिजनित स्पष्ट ज्ञानकी



सति मतिजनितं स्पष्ट ज्ञान श्रुतम् । असमाग्-  
दर्शनादिगणजनितक्षयोपशमनिमित्तम् अवच्छिन्न  
विषयं ज्ञानमवधि । ईर्ष्यान्तराय ज्ञानावरणक्षयो-  
पशमे सति परमार्थगतस्यार्थस्य स्फुट परिच्छेदक  
ज्ञानं मन पर्याय । तप क्रियाविशेषान् यदर्थ  
सेवन्ते तपस्विनस्तज्ज्ञानमनाज्ञानासस्पष्टं केवलम् ।  
तत्रायं परोक्ष प्रत्यक्षमनात् । तदुक्तं,—विज्ञान स्वपरा-  
भासि प्रमाण वाधवर्जितम् । प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च द्विधा-  
मेव , विनिश्चयादिति । अन्तर्गणिकभेदस्तुसविस्तर-  
स्तत्रैवागमेऽवगन्तव्य । ससरणकर्मोच्छ्रिता,—

श्रुति कहते हैं। अवधि असमाग्दश नादिगणजनित वा ज्ञानावरण  
क्षयोपशम निमित्त यो मर्त्यादाविषयक ज्ञान उक्तो अवधि कहते  
है। ईर्ष्यान्तराय ज्ञानावरणका चूहान्त क्षय होनेसे, परका मनो  
गत विषयका स्फुट परिच्छेदक ज्ञान उक्तो मन पर्याय ज्ञान  
कहते है। ऊर तपस्वीगण जिसके निमित्त तप क्रिया विशेष करते  
हैं, ऊर जिधे अनज्ज्ञानका स स्पष्ट मात्र नहीं, उस ज्ञानका नाम  
केवल। उर्मे प्रथमको परोक्ष ज्ञान कहते है ऊर अपरको प्रत्यक्ष  
कहते हैं। सो कहा है, यथा यो अपणिको ऊर अनज्को विशेषरूपसे  
प्रतिपादित करे, सोही वाधावज्जित विज्ञान प्रमाण होता है।  
सो दो प्रकार—प्रत्यक्ष ऊर परोक्ष। इर्मे यो भवान्तरभेद है,  
सो भागमेसे विस्तर जानने। जिस्करके धारवार गमनागमन

बुद्धतास्य श्रद्धधानस्य ज्ञानवतः प्राप्रगमणकारण-  
 क्रियानिवृत्तिः सम्यक्चारित्रम् । तदेतत् सप्रपञ्चमुक्त-  
 मईता । सर्वथावद्योगाना त्यागधारित्रमुच्यते ।  
 कोर्षित तदहिंसादिब्रतभेदेन पञ्चधा ॥ अहिंसा-  
 सूनृतास्तो यत्र ह्यचर्यापरिग्रहाः । न यत्प्रमाद-  
 योगेन जीवितव्यपरोपणम् ॥ चराणा स्यावराणाञ्च-  
 तदहिंसाव्रत मतम् । प्रिय पथ्य वचस्तथा नूनृतं-  
 व्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियञ्चारितञ्च  
 यत् । अनादानमदत्तस्यास्ती यत्र तमुदीरितम् ॥

श्रेयं च न सक्रमो का उच्छेद करणमि समुद्यत श्रद्धागीन ज्ञानवान्  
 पुनरप्यथो पापसमूहका हेतु क्रिया निवृत्ति उक्तो सम्यक् चारित्र  
 कहने हैं । अर्हं तो ने उक्तो विस्तारसेती कहा है । यथा चिन्दित  
 यो विषयस मग उक्ता यो सत्य प्रकारसे परिहार करणा  
 उक्तो चारित्र कहते है । सो चारित्र अहिंसादिब्रतभेदो करके ५  
 प्रकारका है,—अहिंसा१ सूनृता२ अस्तीय३ ब्रह्मचर्य४ ऊर  
 अपरिग्रह५ । उक्तो विषे प्रमादउपशेती स्वावर ऊर लङ्गम पदांशे  
 समुदायको जीवो का यो रक्षण कारण उक्तो अहिंसा कहते  
 हैं । प्रिय, हित ऊर तथ्यवाक्यका नाम सूनृत व्रत । जिम्मे  
 लोको को अप्रीति ऊर अहित हीय वा जन्मे, उस वचनीको  
 सत्यता होनेसेभी सत्य नहीं होता । किसीने कोइ उच्य नहीं  
 दिया उक्तो नहीं लेना उक्ता नाम अस्तीय व्रत । मन करके,

दिव्यौदरिकयामाया - कृतानुमतकारितैः । मनो  
 वाक्कायतस्त्रागो ब्राह्मणाष्टादशधा मतम् ॥ सर्व्वभावेपु  
 मूर्च्छायास्त्राग स्वादपरियह । यदसत्स्तपि जायेत  
 मूर्च्छया चित्तविप्लव ॥ भावनाभिर्भावितानि पञ्चभिः  
 पञ्चधा क्रमात् । महाव्रतानि लोकस्य साधयन्धव्ययं  
 पदमिति ॥ भावनापञ्चकप्रपञ्चनञ्च प्ररूपितम् ।  
 हास्यलोभभयक्रोधप्रत्याख्यानैर्निरन्तरम् ॥ आलोच्य-  
 भाषणेनापि भावयेत् सूत्रत व्रतमित्यादिना ॥ एतानि  
 सम्यग्दर्शनज्ञानचारिचानि मिलितानि मोक्ष-

यदेन करके, काय करके ऊदरिक येकिय मेधुनका यो त्याग  
 उक्तेो ग्रहमर्ष्य कहते हैं । उक्तेो रूपभेद हैं विषय समस्तका  
 अभाव रहणसेही तदुत्पन्न मूर्च्छा अर्थात् मोहका कोडरूप  
 आविष्कार नहीं होनेका नाम अपरियह । उसी प्रकार अभाव होनेसे  
 मूर्च्छा उपस्थित होके चित्त विप्लव होता है । यहै यो महाव्रत  
 समस्त यथाक्रमसेती पाच प्रकार भावना करके भावित  
 होनेसेही लोक मोक्षपदको साधन करै । एही पञ्च प्रकार  
 भावना सविस्तर मणना किया है, यथा हास्य? लोभ? भय? क्रोध  
 इनो का त्याग कर भाषण इत्यादि महाय करके आलोचना करके  
 निरन्तर सुत्र व्रतका भावना करणा । कहा हुआ सम्यग्दय न  
 कर सम्यग् ज्ञान कर सम्यक् चारित्र मिलित होके मोक्ष भिद  
 करै । मिलित नहीं होनेसे एकाकी मोक्ष साधनसे समर्थ नहीं ।

कारण न प्रत्येक यथा रसायनज्ञानश्रद्धानावरणानि-  
सम्भूय रसायनफल साधयन्ति न प्रत्येक ॥ अत्र  
संचेषतस्तावज्जीवाजीवाख्ये द्वे तत्तु स्तः तत्र  
बोधात्मकोजीवः अबोधात्मकस्तुवजीव । तदुक्त  
पद्मनन्दिना—चिद्चिद्द्वे परे तत्तु विवेकस्त-  
द्विवेचनम् । उपादेयमुपादेय ह्येय ह्येषु कुर्वन्त ॥  
ह्येय हि कर्तृरागादि तत् कार्य्यमविवेकिनः ।  
उपादेयपर ज्योतिरुपयोगैकलक्षणमिति । सहज-  
चिद्रूपपरिणति स्वीकुर्व्याणे ज्ञानदर्शने उपयोगः स

जसा रसायन ज्ञान श्रद्धान्तर ए सव मिलित  
कार्के रसायन फल साधन करे एकाकी होने सके नही । इच्छे  
संचेष विधान करके जीव उर अजीव नामक द्विविध तत्तु  
सन्निविष्ट हुए हैं । तिसरे बोधात्मक जीव उर अबोधात्मक अजीव ।  
भगवान् पद्मनन्दने कहा है—जसा चित् उर अचित् भेद  
करके परम तत्तु दो प्रकार है । जो उपादेय है उक्ता श्रद्दण  
है । उर यो ह्येय है उक्ता परिहार पूर्वक कहे हुए दोनो  
तत्तुो की विवेचना अर्थात् विशेष विचार करणा उक्ती विवेचक  
कहते हैं । ह्येय शब्द करके रागादि समझने । ए रागादि  
अविवेकका कार्य्य है । यो उपादेय है योही परम ज्योति ।  
उपयोग उही ज्योतिका एकमात्र लक्षण । उच्छे सहज चिद्रूप  
परिणति स्वीकार करके से ज्ञान एव नका यो उपयोग अर्थात्

परस्परप्रदेशात् प्रदेशबन्धात् कर्मण्यैकीभृतस्यात्मनो-  
 ऽन्यत्वप्रतिपत्तिकारण लक्षण भवति ।  
 सकलजीवसाधारण चैतन्यमुपशमक्षयक्षयोपशम-  
 वशाद्दौषगमिकक्षयात्मकक्षयोपशमिकाभावेन दार्म्यो-  
 दयवशात् कलुषाख्याकारेण च परिणतजीवपर्याय-  
 जीवविषक्षाया स्वरूप भवति ॥ यद्वोचद्वाचका-  
 चार्य्यं—शौषगमिकाक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य  
 स्वत्तुमौदयिकपरिणामिकौ चेति । अनुदयप्राप्तिरूपे  
 कर्मण उपशमे सति जीवस्योत्पद्यमानोभाव शौष-  
 गमिक यथा पडेक कलुपता कुर्वति क्षतकादि-  
 द्रव्यसम्बन्धादध पतिते जलस्य स्वच्छता । कर्मण

अधिकार जन्मता है, उसको ही कर्मके साथ एकीभूत  
 आत्माका अनन्यत्व प्रतिपत्तिका हेतुभूत लक्षण कहते हैं । और  
 समस्त जीवसाधारण चैतन्यही उपशम क्षय और क्षयोपशमवशासेती  
 उपशम क्षयात्मक यो क्षयोपशमिक एही द्विविध भाव सहाय करके  
 कर्मोदय भाव प्रयुक्त कलुपरूप अनराकार स्वरूपमें परिणत  
 होता है । भगवान वाचकाचार्य्य कहते हैं, जीवको उपशमिक,  
 क्षायिक, मिश्र, ऊदयिक और परिणामिक, एही पञ्चविध भावको  
 नाम सत्तु है । 'उक्तो कर्मका अनुदय प्राप्तिरूप उपशम  
 होनेसे जीवका उत्पद्यमान । यो भाव उसको उपशमिक  
 कहते हैं । जैसे पट्ट कलुपत्व सम्पादन पूर्वक निर्मली आदि

घयोपगमे सति जायमानो भावः घायिकः यथा—  
 मोघः । जभयात्मभावी मिश्रः यथा—अलस्यार्द्ध-  
 राक्षता । वाग्मीदये सति भवन्भावः औदयिकः ।  
 कर्मोपशमाद्यनपेक्ष. सहजोभावशेरानत्वादिः पारिया-  
 निकः । तदेतत् सत्त्व यथासम्भवं भव्यस्याभव्यस्य वा  
 जीवस्य तस्य स्वरूपमिति सूचार्थः । तदुक्तं स्वरूपसम्बो-  
 धने—ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो भिन्नाभिन्न कथञ्चन ।  
 ज्ञानं पृथ्वापरैर्भूतं सोऽयमात्मैति योर्त्तित इति ॥ २ ॥

इस सम्बन्धमें जो घप पतित होनेसे, जसकी जैसे निर्भलता  
 होता है । वैसेही कर्मका उपशम होनेसे, जीवका जायमान  
 भावको उपगम कहते हैं । एत विल कुल घय होनेसे यो  
 भाव एस्तो घायिक कहते हैं जैसे मोघ उहीरूप जभयात्मक  
 भावको मिश्रभाव कहते हैं । जैसे जसकी घट स्वरूपता ।  
 वाग्मीका घटय होनेसे, यो भाव घाविर्भाव होय एस्तो औदयिक भाव  
 कहते हैं । जस कर्मको उपशमादि अपेक्षा परिहार करके यो  
 शक्य भाव होय एस्तो पारियाणी भाव कहते हैं । चेतनत्वादि  
 इही भावमें रहे हैं । इहीका नाम सत्व । अर्थात् यथासम्भव  
 जीवको भव्य वा अभव्यत्व जीवके तत्, अर्थात् स्वरूप, एही  
 सूचका सत् । अरूपसम्बोधनमें कहा है—अंश यो शक्ये निवृ-  
 त्तो है अथवा अभिन्न कथञ्चिद्विन्न वा अभिन्नो है एवम् आत्मा  
 कहते हैं । एही आत्मा पृथ्वापरैर्भूत आत्मरूप ॥ २ ॥

ननु भेदाभेदयो, परस्परपरिहारेणावस्थाना-  
दन्यतरस्यैव वास्तवत्वादुभयात्मकत्वमयुक्तमिति चेत्त-  
द्युक्तम् । वाधे प्रमाणाभावात् । अनुपलम्बी हि  
वाधक प्रमाणम् । न लो,स्ति समस्तोषु वस्तुष्वनेक-  
रसात्मकस्य सदादिनो सते सुनिश्चितित्वलम् ।  
अनरे पुनर्जीवाजीवयोरपर प्रपञ्चमाचक्षते जीवाकाश-  
धर्माधर्मपुद्गलास्तिकायभेदात् । एतेषु पञ्चसु  
तत्त्वेषु कालत्रयसम्बन्धितया स्थितिव्यपदेशे अनेक-

यो योलोकि, भेद जर अमेद इगो को विरोध होनेसे परस्पर ।  
अवस्थान असङ्गत इससेती इनो में से एकका वास्तवत्व बोलनेसे  
उभयात्मकत्व कभी सङ्गत होने सक्ता नहीं ए सत्य है । किन्तु  
वाधविषयमें प्रमाणाभाववशसेभी इह सत्यता अयुक्त है । उपलम्भ है  
सी वाधक प्रमाण, यहा वो नहीं जैसे समस्त वस्तुही अनेक रसा  
त्मक उपलब्ध होते हैं अर्थात् कोइ वस्तुमें अनेक रस रहनेसेभी एक  
कालमें अनेक रसो की प्रतीति होती नहीं । आत्मानं दै से ही  
भेदाभेद रहनेसेभी उसकी प्रतीति होती नहीं । इससेती  
अनेक रस आत्मानं भेदाभेदादीको मतमेंभी प्रसिद्ध होता है ।  
कोइ कोइ जीव जर अजीव दोनु हीका अग्न प्रकाशसे बणन  
करते हैं । जैसे जीव आकाशर धर्म अथवा पुद्गलास्तिकाय ।  
एही पञ्चविध तत्त्व, कालत्रय सम्बन्धी । सुतरा इनो की जैसे स्थिति  
है, कदा भाव, वहीरूप अनेक प्रदेश विविध बोलके शरीरकी

प्रदेशत्वेन शरीरवत् कायव्यपदेशः । तत्र जीवा  
द्विविधा, ससारिणो मुक्ताश्च । भवाद्भवान्त-  
प्राप्तिमन्तः, ससारिणः । ते च द्विविधाः, समनस्का  
अमनस्काश्च । तत्र सज्जिनः समनस्का । शिञ्जा-  
क्रियालापग्रहणरूपा सज्जा तद्विधुरास्त्वमनस्काः । ते  
चामनस्का द्विविधाः त्रय स्यावरभेदात् । तत्र द्वी-  
न्द्रियाह्य शब्दस्पर्शरसगण्डलोकप्रभृतयश्चतुर्विधास्त्वयाः  
पृथिव्यग्नेजोवायुवनस्पतयः स्यावरा । तत्र मार्गगतधूलिः  
पृथिवी इष्टकादि पृथिवीकाय, पृथिवीकायत्वेन येन  
सृहीता स पृथिवीकायक, पृथिवीं कायत्वेन यो

तरुं इनो की काय है, उर्ध्वं जीव दो प्रकारके ससारी और  
मुक्त । यो जन्मके बाद पुनज्जन्म ग्रहण करे उसको ससारी  
कहते है । ससारीके दोय भेद । समनस्क ऊर अमनस्क ।  
उर्ध्वं यो स पाविगिष्ठ है उनो को समनस्क कहते है । यहीं  
स ज्ञानशब्द करके शिञ्जा क्रिया आलाप ऊर ग्रहण । जिनी को  
स ज्ञान नहीं आको अमनस्क कहते है । अमनस्क दो प्रकारको  
जैसे त्रस और म्यावर । उर्ध्वं जिनी को दो इन्द्रिय है वंसे  
शब्दादि चतुर्विध प्राणीयो को त्रय कहते है । ऊर पृथिवी  
जलर तत्र वायु वनस्पति ए स्यावर करके परिगणित होते है  
उर्ध्वं धूलि प्रमुक्त पृथिवी और इष्टकादि पृथिवी काय यो  
पृथिवीको कायरूप ग्रहण किया है, उसको पृथिवकाय



ग्रहीष्यति स पृथिवीजीवः । एवमवादिष्वपि  
 मेदचतुष्टयं योज्यम् । तत्र पृथिव्यादिकायत्वेन  
 गृहीतवन्ती ग्रहीयन्तश्च स्थावरा गृह्यन्ते न पृथि-  
 व्यादिपृथिवीकायादयः तेषां जीवत्वात् । ते च  
 स्थावराः अपर्यन्तैकेन्द्रियाश्च भवान्तरप्राप्तिविधुरा  
 मुक्ताः धर्माधर्माकाशास्तिकायास्ते एकत्वशालिनो  
 निष्क्रियाश्च द्रव्यास्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः । तत्र  
 धर्माधर्मौ प्रसिद्धौ । आलोकेनावच्छिन्ने नभसि  
 लोकाकाशपदवेदनीये सर्वत्रावस्थितिगतिस्थित्यु-

कहते हैं ऊपर जो पृथिवीको कायरूप ग्रहण करेगा ऊम्की  
 पृथिवी जीव कहते हैं । जनादि पदायभी एही प्रकार मेद  
 चतुष्टय युक्त होने सकते हैं जैसे जनर जनकायर जलकायिकर  
 जलजीवः । 'ऊर्ध्वे' यो यो पृथिवीको कायरूप ग्रहण किया है  
 या शरीरमा यो स्थावररूप करके परिगृहीत होता है । पृथि-  
 व्यादि ऊपर पृथिवीके कायादि जीव मोलने स्थावर समस्त  
 पदमनरूप एकमात्र इन्द्रिय विग्रित । जिनो का पुनज्य ग्र  
 होय नहीं इसवास्ते इनो को मुक्त कहते हैं । धम्म ऊपर अधर्म  
 ऊपर आकाश इनो के अस्तिकाय एकत्व सम्बन्ध है । ऊपर प्रियाही  
 नहीं ऊपरधर्म द्रव्य यो है । सो देगसती देशान्तर प्राप्तिका  
 कारण है । 'ऊर्ध्वे' धम्म अधर्मका अर्थ प्रसिद्ध है । यो लोकमें  
 अस्माय अर्थ ऊर्ध्वे परिगत एव यो अलोक करके विशिष्ट

पपहो धर्माधर्मायोरुपकारः - अतएव धर्मास्तिकायः  
 प्रहत्तानुमेयः अधर्मास्तिकायः स्थित्यनुमेयः । अन्य-  
 वस्तुप्रदेशमध्ये ऽनास्य वस्तुनः प्रवेशोऽवगाहः  
 तदाकाशकृत्यम् । स्पर्शरसवर्णावन्तः पुद्गलाः ।  
 ते च द्विविधाः अणवः स्कन्धाश्च । भीक्षुमणक्वा  
 अणवः द्वाणुकादयः स्कन्धा । तत्र द्वाणुकादिस्कन्ध-  
 भेदादणुवादिस्तत्पद्यते अणुादिसघातात् द्वाणुकादिस्त-  
 त्पद्यते वाचिद्भेदसघाताभ्या स्कन्धोत्पत्तिः अतएव

होय नहीं सोई नभोमण्डलकी सर्व त अवस्थिति ऊर गति स्थिति  
 एही तिन व्यापारका समाधान धर्माधर्मके उपकारका—धर्मा-  
 धर्ममे ए उपकार लाभ होता है । यो उसीरूपमे सर्व त  
 अवस्थानादि किया जाय इससेती प्रहत्ति करके धर्मास्तिकाय  
 अनुमेय है । अर्थात् जहा प्रहत्ति है वही धर्म द्रव्य है औ सी  
 अनुमान होता है । ऊर जहा स्थिति है वही अधर्मास्तिकाय है  
 अर्था अनुमान होता है । अनप्रवक्तुं प्रदेशमे अनप्रवक्तुका प्रदेशता  
 अवगाह कहते है । इन्को आकाशका कृत्य कहते है । जिम्मे  
 स्वर्ग रस ऊर वण है उन्को पुद्गलन कहते है । सो दो प्रकार  
 अणु १ ऊर स्कन्ध २ । विष्णुं जिनी का भोग होय नहीं उन्को  
 परमाणु कहते है । ऊर द्वाणुकादिको को स्कन्ध कहते है ।  
 द्वाणुकादि स्कन्ध भेद होनेमे परमाणुकी उत्पत्ति होती है ।  
 ऊर अणुादि सघातसेती द्वाणुकादि उत्पन्न होतेहैं । कही

पूरयन्ति गलन्तीति पुद्गला । कालम्यानैक-  
 प्रदेगत्वाभावेनास्तिकायत्वाभावेऽपि द्रवात्वमस्ति ।  
 तद्वचनयोगात् । तदुक्तं गुणपर्यायनदद्रवामिति ।  
 द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा, यथा जीवस्य  
 ज्ञानत्वादिसामान्यरूपा पुद्गलस्य रूपत्वादि-  
 सामान्यस्वभावा धर्माधर्माकाशकार्याना यथा  
 सम्भव गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वादिसामान्यानि  
 गुणा । तस्य द्रव्यास्योक्तत्वेण भवनमुत्पाद  
 तद्भाव परिणाम पर्याय इति पर्याया यथा  
 जीवस्य घटादिज्ञानसुखकेशादय पुद्गलस्य सृत्-

स घात कर भेद दोष के योगमें स्तम्भकी उत्पत्ति होती है ।  
 इमीवास्ते यो पूरण करे कर गमित होय उम्का पुद्गल कहते  
 हैं । कालके बहु प्रदेग विगिष्ट नही होनेसे उस्को अस्तिकायत्व  
 नहीं होनेमेभी द्रव्य कहा जाता है । किसवास्तेकि उर्ध्व  
 द्रव्यका लक्षण पाया जाता है । सोइ कहा है गुण पर्याय  
 विगिष्टको द्रव्य कहतेहैं । उर्ध्व यो द्रव्यके आश्रित कर निर्गुण  
 उस्को गुण कहते हैं । जैसे जीवका ज्ञानत्वादि सामान्यरूप  
 गुण पुद्गलके रूपादि सामान्य स्वभाव गुण कर धर्माधर्म आकाश  
 इनां का यथासम्भव गति स्थिति कर अवगाह हेतुत्वादि  
 सामान्य गुण उसी द्रव्यका उक्तरूप उत्पादन परिणामको  
 पर्याय कहते हैं । जैसे जीवका घटादि ज्ञान सुख कर

पिण्डघटादय धर्मादीना गत्यादिविग्रेया पट्टव्या-  
 णीति प्रसिद्धिः । केचन सप्ततत्त्वानीति वर्णयन्ति  
 तदाह जीवाजीवास्रवबन्धसम्बरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वा-  
 नीति, तत्र जीवाजीवौनिरूपितौ । आस्रवो निरूप्यते,  
 ओदयिकादिकायादिवचनद्वारेणात्मनश्चलन योग-  
 पदवेदनीयमास्रवः, यथा सलिलावगाहि दार नद्या-  
 सुवण कारणत्वादास्रव इति निगद्यते तथा योग-  
 प्रणाडिकया कर्मास्रवतीति स योगास्रवः । यथा  
 धाद्र वस्त्र समन्ताद्वातानीत रंगुजातमुपादत्ते तथा  
 कपायजलाद्द्रात्मा योगानीत कर्म सर्व्यप्रदेशे

केशादि पुद्गलका भृत्पिण्ड ऊर घटादि धर्मादिकी का  
 गत्यादिविग्रेय इनकी पर्याय कहते हैं इसीकारणसे पहविध द्रव्य  
 प्रसिद्ध हैं कोई कोई सप्त तत्त्व कहते हैं । जैसे जीव अजीव  
 आस्रव बन्ध सम्बर निर्जरा ऊर मोक्ष । उर्षा जीव अजीवका  
 स्वरूप पूर्वे निरूपण किया है । अब आस्रवका स्वरूप व्याख्यान  
 करतेहैं । ओदयिकादि काय चलन द्वारा आत्माकी यो चलन  
 होय, यो योग शब्द करके गृहीत होता है, उसकी आस्रव कहते  
 हैं । जैसे जलके चलनसे नदीका चलन होय । उसी चलनकी  
 कारणधर्मसेती आस्रव कहते हैं । उसीतरे योग नाली करके  
 कर्मका आना उसीकी आस्रव कहते हैं । जैसा धाद्र वस्त्र  
 वायुन धर्मसेती, रेणु समूहकी ग्रहण करे, उसीतरे कपायरूप

गृह्णाति । यथा वा निष्टप्ताय पिण्डे जले क्षिप्ते अन्नं, समन्ताद् गृह्णाति तथा कपायोष्णो जीवो योगानीतं कर्म समन्तादादत्ते । कपति हिनस्त्यात्मानं कुगतिं प्रापणादिति कपाय, क्रोधो मानो माया लोभश्च । स द्विविधः शुभाशुभभेदात् । तत्राहिसादि शुभकाययोग, सत्यमितहितभाषणादिशुभो वाग्योग । तदेतदासुवप्रभेदजातः कायवाङ्मनःकर्मयोगः । स आसुव, शुभ, पुण्यस्य अशुभं पापस्येत्यादिना सूत्रसन्दर्भेण ससरम्भमभाणि । अपरेत्वेव मेगिरे आसुवयति पुरुषं विषयं चिन्द्रियप्रवृत्तिरासुवः । इन्द्रिय-

जल करके आर्द्रिभूत आत्मा योग बले आनीत कर्मको सव्य प्रदेशमें ग्रहण करता है । अथवा जैसा उत्तम बाहुपिण्ड जनमें टाननेसे मर्त्य प्रकार जलकणों को ग्रहण करे वैसेही कपाय करके उष्ण जीव योगानीत कर्मको सव्य प्रकार ग्रहण करे । कप अर्थात् कुगति प्राप्त करके आत्माको हीनभावापन्न करे इसीवास्ते इस्की कपाय कहते हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ, इनो के भेद हैं । दो प्रकारकी कपाय होते हैं । जैसे शुभ और अशुभ । उसमें अहि सादि शुभका योग एवं सत्यमित हितभाषणादि शुभ वाग्योग । अनर अनर इस्तरे कहते हैं आसुव शब्द करके इन्द्रिय प्रवृत्ति किसवास्ते कि पुरुषको विषयमें गाढामत्त करता है इसवास्ते इस्का नाम आसुव ।

द्वाराहि पौन्य जरोतिर्विषयान् स्रग्द्रुपादिज्ञान-  
रूपेण परिणमत इति । मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-  
कषायवशाद् योगवशाच्चात्मा सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिना-  
मनन्तान्तप्रदेशाना पुद्गलाना कर्मवन्धयोग्याना-  
मादानमुपश्लेषण यत् करोति स वन्धः । तदुक्तं  
सकषायो जीवः कर्मभावयोग्यान् पुद्गलानादत्ते स  
वन्ध इति तत्र कषायग्रहणं सर्व्ववन्धहेतूपलक्षणार्थम् ।  
वन्धहेतुन् पपाठ वाचकाचार्य्यः मिथ्यादर्शनाविरति-  
प्रमादकषाया वन्धहेतव इति । मिथ्यादर्शन  
द्विविध मिथ्याकर्म्मोदयात् परोपदेशानपेक्ष तत्त्वा-  
ग्रहान नैसर्गिकमेक, अपर परोपदेशजम् । पृथिव्या-

तथाहि पौरुष जरोति इन्द्रिय द्वाराद् विषय सकल स्वर्ग्य  
करके रूपादि ज्ञानमे परिणत होता है । आत्मा मिथ्यादर्शन  
अविरति प्रमाद ऊर कषायवग एव योगवग मनन्तानन्त प्रदेश-  
विगिष्ट कर्मवन्धका उपयोगी पुद्गलानो का यो परिग्रह ओ परिहार  
करे उक्ती वन्ध कहते है । सीई कहता है, जीव कषायवग  
कर्मभाव योग्य पुद्गलानो को यो परिग्रह करे उक्ती को वन्ध  
कहते हैं । यहा कषायवगसेती वन्धका हेतुभूत समझना ।  
वाचकाचार्य्य ओसेही वन्ध निर्द्देश किया है । जैसे मिथ्यात्व१  
अविरति२ प्रमाद३ ऊर कषाय४ एइ वन्धके हेतु है । मिथ्या-  
दर्शन द्विविध । प्रथम मिथ्याकर्म्मके उदयवग परके उपदेश विगार

दिपट्कोपादानक पडिन्द्रियासंयमनञ्च अविरति ।  
 पञ्चममितिगुप्तिष्वनुत्साह प्रमाद । कषाय  
 क्रोधादि तत्र कषायान्ता स्थित्यनुभावबन्धहेतव  
 प्रकृतिप्रदेशबन्धहेतुर्योग इति विभागः । बन्ध-  
 चतुर्विध इत्युक्त प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तु  
 तद्विधय इति । यथा निम्बगुडादिस्तिक्तमधुरत्वादि-  
 स्वभाव एवमावरणीयस्य ज्ञानदर्शनावरणत्व-  
 मादित्यप्रभोच्छेदकाम्भोधरवत् , प्रदीपप्रभाति  
 रोधायककुम्भवच्च , सदसहेदनीयस्य सुखदु खोत्-  
 पादकत्वमसिधारामधुलेहनवद दर्शनमोहनीयस्य

समुद्भूततत्त्वाग्रहान सो नैसर्गिक । द्वितीय परोपदेशजनित, पृथिवी  
 प्रभृतिका द्वय उपदेगात्मक द्वय इन्द्रियका मयमन नहीं करणा  
 उम्को अविरति है । पांचविध ममिति गुप्तिमे यो चतसाहका  
 विरह सो प्रमाद । कषाय क्रोधादि पूर्वे कहा है । उम्के मिथ्या  
 दर्शनसे कषाय पर्यन्त चार स्थिति जर अनुभावबन्धका कारण  
 योगसेती प्रकृति प्रदेश बन्ध होता है । बन्ध चतुर्विध जेमे प्रकृति  
 स्थिति अनुभाग जर प्रदेश । जेमे निम्बगुडादिको का तिक्त  
 मधुर स्वभाव है, वैसेही आवरणीय वस्तुका ज्ञान दशन  
 आवरण एही स्वभाव है । जेमे मीघ सूर्यप्रभाका आवरणक  
 एव कुम्भ दीपप्रभाका उच्छेदक । फिर सदसहेदनीय वस्तुका  
 स्वभाव सुखदु खका उत्पन्न कारण, जैसे अतिधाराने मधु देनेसे

तत्तुार्थाश्रयानकारित्वं दुर्जनसङ्गवच्चारित्रे मोह-  
नीयस्यासयमहेतुत्वं मद्यमदवदायुषो देहवन्धकर्तृत्व  
जलवत्नाम्नो विचित्रनामकारित्वं चित्रकवद्-  
गोत्रस्थोच्चनीचकारित्वं कुम्भकारवद्दानादीना  
विघ्ननिदानत्वमन्तरायस्य स्वभावः कोपाध्यक्षवत् ।  
सोऽयं प्रकृतिवन्धोऽष्टविधः, द्रव्यकर्मावान्तर-  
भेदमूलप्रकृतिवेदनोय । तथावोचदुमास्वामिवाचका-  
चार्य्यं, आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीयायुर्नामगोत्रा-  
न्तराया इति तद्भेदश्च समगृह्णात् पञ्चनवाष्टाविंशति-

सोहने करणसे मुखदुख दोनुही उत्पन्न होते हैं । दर्शन  
मोहनीय अर्थात् जिम्मे, देखनेसे मोह जन्म वे सा यस्तुका स्वभाव  
तत्वका अश्रयान, जैसे दुर्जनसे सङ्गसे तत्वका अश्रयान होय ।  
पवित्र मोहनीय यस्तुका स्वभाव असंयम समुत्पादन करण  
जैसे मद्य असंयमका कारण देहमें बन्धकरण आयुकर्माका स्वभाव  
चित्रप्रकारकी परे विचित्र नाम धारण करण नामका स्वभाव  
गोत्रका स्वभाव कुम्भकारकी परे उच्च नीच कारित्व अन्त-  
रायका स्वभाव कोपाध्यक्षका परे दातादिकमें विघ्नकारित्व ।  
एही प्रकृतिवन्ध अष्टविध । इम्हा द्रव्य कर्म अवान्तरभेद  
मूलप्रकृति द्वारा परिज्ञात होते है । सोही उमास्वामी वाचका-  
चार्य्य कहते है । ज्ञान दर्शन आवरण वेदनीय मोहनीय आयु  
नाम गोत्र अन्तराय एही प्रकृति बन्ध । इससे उत्तरभेद ५,८



चतुर्विंशत्वारिंशद् द्विपञ्चदशभेदा यथाक्रममिति  
एतच्च सर्व्वं विद्यानन्दादिभिर्विद्वत्तमिति विस्तर-  
भयान्न प्रस्तूयते ॥ ३ ॥

यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणामेतावन्तमनेहसं  
साधुर्य्यभावादप्रच्युतिः स्थितिः तथा ज्ञानावर-  
णादीना मूलप्रकृततीनामादितस्त्रिष्टणामन्तरायस्य च  
विंशत्सागरोपमकोटिकोय्य परास्थितिरित्याद्याक्तं  
कालदुर्दानवत् स्वोयस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः ।

यथा अजागोहिष्यादिक्षीराणा तीव्रमन्दादि-  
भावेन स्वकार्य्यकरणे सामर्थ्य्यविशेषोऽनुभाव तथा  
पुद्गलाना स्वकार्य्यकरणे सामर्थ्य्यविशेषोऽनुभाव  
प्रदेशवन्ध ।

२८, ४, ४२, २, १५, परिकल्पित होते है । पूजा  
विद्यानन्दादि प्रभृति भाचार्य्याने विचरण किया है विस्तारके  
भयसे यहा लिखा नहीं ॥ ३ ॥

जैसा अजा गो महिषी प्रभृति क्षीरका तीव्र मन्दादिभाव  
करके अपने कार्य्य करनेमें सामर्थ्य्य विशेषका अनुभाव कहते है,  
उसीतरें कर्म पुद्गलो का अपने कार्य्य करनेमें सामर्थ्य्य विशेषका  
नाम अनुभाव । कर्मभाव प्राप्त अनन्तानन्त प्रदेश विशिष्ट  
पुद्गल स्वन्धोका भावाप्रदेशमें अनुपवेशको प्रदेशवन्धु कहा है ।

आस्रव निरोधः सम्बर येनात्मनि प्रविशत्  
 कर्म प्रतिपिध्यते न गुप्तिसमित्यादि सम्बर ।  
 सञ्चारकारणाद् योगादात्मनो गोपनं गुप्तिः । सा  
 त्रिविधा, कायजाड्मनोनिग्रहमेदात् । प्राणि-  
 पीडापरिहारिण्य सम्यगयन समितिः । सा ईर्ष्या-  
 भाषादिमेदात् पञ्चधा । प्रपद्यितश्च ऐभचन्द्राचार्य्यै —  
 लोकातिवाहिते मार्गे चुम्बिते भाक्षत शुभि ।  
 वनुरचार्यमालोक्य गतिर्ग्रीष्या मता सताम् ॥ आपद्य-

आस्रव निरोधक सम्बर कहते हैं । जिस्को द्वारा आत्माने प्रवेश  
 करी हुए कर्म प्रतिपिद्य होय उम्को गुप्ति कहते है । समित्यादि  
 सम्बर मध्यका हेतुभूत योगसेती आत्माको गोपन करणा  
 उम्को गुप्ति कहता है । गुप्ति तिन प्रकार । जैसे मनोनिग्रह  
 वाग्निग्रह कायनिग्रह । प्राणिगणका निघ्ने केग उपस्थित  
 न होय, उम्को पनुदप अयन करणेका नाम अर्थात्  
 मन्दरण करणेका नाम समिति । एही समिति ईर्ष्याभाषादि  
 मेदाती उपहार । ईर्ष्यासमिति १ भाषासमिति २, एषणा-  
 समिति ३ आदानसमिति ४ उत्तरगमसमिति ५ । भगवान  
 हेतुभाषासमिति उम्को का विचारसे अर्थ वर्णन किया है ।  
 जैसे मूर्खने विचार करके प्रयागित लोको को यातायात मार्गमें  
 प्राणिगणकी रक्षणार्थ विगेषदप दर्शन करके गमन करणेका  
 नाम ईर्ष्या समिति । जिघ्ने समस्त लोको का मन प्रभव

तागत सर्वजनीन मितभाषणम् । प्रियावाच यमाना  
 सा भाषासमितिक्रच्यते ॥ द्विचत्वाग्निशता भिक्षा  
 दोषो नित्यमद्रूपितम् । मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणा  
 समितिर्मेता ॥ आसनादीनि सम्वीक्षा प्रतिलङ्घ्य च  
 यत्नत । गृह्णीयान्निधिपेद्यायेत् सादानसमिति  
 स्मृता । कफमूत्रमलप्रायैर्निर्जन्तुजगतीतले ।  
 यत्नाद्यदुत्सृजेत् साधु सोत्सर्गसमितिर्भवेत् ॥  
 अतएवास्त्रय स्रोतसोद्धार सवृणोतीति सम्वर इति  
 निराहु । तदुक्तमभियुक्तै — आसुवोभवहेतु स्यात्

होय उसरूप मित वाक्य प्रयोग करणेका नाम भाषा समिति ।  
 जिनो ने वचनको स यमन किया है उनको भाषा समिति  
 प्रिय है । जो ४२ दोष करके रहित भिक्षा ग्रहण करणा  
 जिन्हे कोइ दोषका स स्वर्य नहीं उस आहार ग्रहण करणेका  
 नाम एषणा समिति । आसनादि ससुदाय समग्रदर्शन कर  
 वलपूख क प्रतिल घन करके निक्षेप करणा ग्रहण करणा उस्का  
 नाम आदान समिति । कफमूत्रमलादि निर्जैव भूमिमें  
 परिस्थापन करणा उस्को उत्सर्ग समिति कहते हैं । इसी  
 कारणसे आस्त्रय स्रोत अर्थात् उत्पत्तिको स वरण करी बीलके  
 उस्को स वर कहते हैं । एही निरूपण किया है । पण्डितो-  
 नेभी वही कहा है—जैसे आस्त्रय भवोत्पत्तिका कारण एय  
 सम्वर मोहका कारण । भगवान अर्हतदेवभी अैसेही

सम्बरो मोहकारणम् । इतीयमार्हती मुष्टिरन्यदस्या-  
 प्रपञ्चनम् । अर्जितस्य कर्मणस्तपःप्रभृतिभि-  
 निर्जरणं निर्जरास्य तत्तु चिरकालप्रवृत्तकपाय-  
 कलाप पुण्य सुखदुःखे च देहेन जरयति नाशयति  
 केशोल्लुञ्चनादिक तप उच्यते । सा निर्जरा द्विविधा  
 यथा कालौपक्रमिकभेदात् तत्र प्रथमा यस्मिन् काले  
 यत् कर्मफलप्रदत्वेनाभिमतं तस्मिन्नेव काले फल-  
 दानाद्भवति निर्जरा कामादिपाकजिति च जेगीयते ।  
 यत् कर्म तपोवलात् स्वकामनयोदयावलि प्रवेश्य  
 प्रपद्यते तत् कर्म निर्जरा । यदाह—समार-  
 वीजभूताना कर्मणा जरणादिह । निर्जरा सम्मता  
 हेधा सकामा कामनिर्जरा ॥ स्मृता सकामा-  
 यमिनामकामात्वन्यदेष्टिनामिति । मिथ्यादर्शनादीनां

---

मौमासा क्रिया है अनारूपभी इस्का प्रपञ्चन क्रिया है । अर्जित  
 अर्थात् अर्जित कर्म तपसा करके निर्जरा अर्थात् कर्मका अय  
 करणा उसको निर्जरा तत्तु कहते हैं सोइ कथा है । स सारके  
 बीजभूत समस्तकर्मणा जरण अर्थात् अय करणा उसको निर्जर  
 कहते हैं , सो दोय प्रकार—सकाम अर अकाम । उर्ध्वे साधुकु  
 सकाम अर प्राणियो के अकाम निर्जरा । कहा हुए मिथ्या-  
 न्शनादि जो समस्त धर्मके कारण परिगणित उनको दूर

वन्धहेतूना निरोध' अभिनयकर्मभावात् निर्जरा-  
हेतुसन्निधानेनार्जितस्य कर्मणो निरसनादात्यन्तिक-  
कर्ममोक्षणं मोक्ष इति । वन्धहेतुभवहेतुनिर्जरास्थां  
कृतककर्मविप्रमोक्षणं मोक्ष इति । तदगन्त-  
मूर्त्तुं गच्छत्यालीकान्तात् यथा हस्तदण्डादिभ्रमि-  
प्रेरित कुलालचक्रामुपरतेऽपि तस्मिन् तद्वलादेवा  
संस्कारक्षयं भ्रमति तथा भवस्थेनात्मना अपवर्ग-  
प्राप्तये बहुशो यत् कृत प्रणिधानं मुक्तस्य तदभावेऽपि  
पूर्वसंस्कारादालीकान्तं गमनमुपपद्यते, यथा वा

करणा उक्तो मोक्ष कहते हैं । अथवा अभिनय कर्मका  
अभाव एव निर्जरा हेतुके सन्निधान द्वारा अर्जित कर्मका  
निरोधन एही उभय उपाय करके आत्यन्तिक कर्म मोक्षण  
अर्थात् परिहार होय उक्तो मोक्ष कहते हैं । अथवा वन्धका  
कारण एव उत्पत्तिका हेतु एही द्विविध निर्जराके सहायसे ती  
समुदाय कर्म दूर करणा से मोक्ष । इस मोक्षके पर  
लीकान्तमे उर्द्धगमन होता है । जैसे हस्त दण्डादि द्वारा  
भ्रमण करके चलानेसे कुम्भकारके चक्रकी पर उक्ती  
विह्वलितमेभी उक्ते प्रभावसे जहान्तक वेगका क्षय न होय  
तहान्तक भ्रमण करता है, उसी प्रकार भवस्थ आत्मा द्वारा  
अपवर्ग प्राप्तिकेवास्ते जो प्रणिधान समाहित होय मुक्तावस्थामे  
उक्ता अभाव होनेमेभी पूर्व संस्कार वलसे ती अलोक पर्यन्त

सृष्टिकाकृतलेपमलानुद्रव्य जलेऽध पतति पुनरपेत-  
 सृष्टिकावन्धमूर्ध्वं गच्छति तथा कर्मरहित आत्मा  
 अमङ्गत्वाद्गर्भं गच्छति बन्धच्छेदादेरगडवीजवच्चोर्ध्व-  
 गतिस्वभावाच्चाग्निशिखावत् । अन्योन्य प्रदेशानु-  
 प्रवेशे, सत्यविभागेनावस्थान बन्ध, परस्परप्राप्तिमात्रं  
 सङ्गः । तदुक्तं, पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथा  
 गतिपरिणामाच्चाविरुद्ध कुलालचक्रवद्व्यपगत-  
 लेपालानुवदेरगडवीजवदग्निशिखावच्चेति ।

अतएव पठन्ति—गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्र-  
 सूर्यादयो ग्रहाः । अद्यापि न निवर्तन्ते त्वालोका-

गमन करे । अथवा जैसे सृष्टिकानिष्ठ अनासु जलमें डालनेसे  
 निमग्न होय एव सृष्टिकानिष्ठ दूर होनेसे फेर ऊपर आता है,  
 उसीतरे कर्मरहित आत्मा ऊर्ध्वं गमन करता है । एरगडवीज ऊपर  
 अग्निशिखा इनो का जैसा ऊर्ध्वं गमन स्वभाव इस्तरि ऊर्ध्वं गमन  
 स्वभाव इसीवास्ते बन्धका उच्छेद होनेसे आत्माकी ऊर्ध्वं गति  
 होय । परस्पर प्रदेश अनुप्रवेश होनेसे जो अविभागक्रमसेती  
 अवस्थान सो बन्ध । ऊपर परस्पर प्राप्तिमात्रको सङ्ग कहते  
 हैं । इसीवास्ते कहाइ—पूर्व प्रयोग, सङ्गहीनता, बन्धच्छेद,  
 गतिपरिणाम, एही समस्त उपाय करके कुम्भकार चक्रकी  
 परे सृष्टिकाकृतलेप रहित अनासुकी पर एरगड वीजकी परे  
 ऊर्ध्वं गमन करता है । इसीवास्ते निर्द्वं ग किया है । अन्त

काशमागता इति । अन्येतु गतसमस्तक्लेशतद्वासनस्या-  
 नावरणज्ञानस्य सुखैकतानस्यात्मन उपरिदेशा-  
 वस्थान मुक्तिरित्यास्थिषत । एवमुक्तानि सुखदुःख-  
 साधनाभ्या पुण्यपापाभ्या सहितानि नव पदार्थान्  
 वेचन अङ्गीचक्रुः । तदुक्त सिद्धान्तो । जीवाजीवो  
 पुण्यपापयुतावासुव सम्बरो निर्जरण बन्धो मोक्षश्च  
 नव तत्त्वानीति सगृहे प्रवृत्त्या वयमुपरता स्म ।  
 अत्र सर्व्वत्र सप्तभङ्गिमयाख्य न्यायमवतारयन्ति  
 जैना , स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति नास्तिच,

सूत्यादि ग्रहण बार बार गमन करके निवृत्त होते हैं किन्तु  
 जो लोकान्त गमन किया है वो अभीत कभी पावे नहीं पाते  
 हैं ऊरभी आचार्यों ने कहाइ समस्त कुशहीन समुदाय वासना  
 विहीन ऊर अनावरण ज्ञान सम्पन्न होनेसे आत्मा सुख भातकी  
 प्राप्तिमेंही मुक्तभावापव होके उपरिदेशमें अवस्थान करे, उसको  
 मुक्ति कहते हैं । इसीतरे कोइ कोइ महात्मा सुखदुःखका  
 साधनरूप पुण्य पाप सहित नव पदार्थ स्वीकार करते हैं सिद्धान्त-  
 रत्नमें सो कहा है । जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, -सम्बर,  
 निर्जरा, बन्ध ऊर मोक्ष । एइ नव तत्त्व, कहे हैं । - इस स ग्रहमें  
 प्रवृत्त भये है अवयहामे निवृत्त भए हैं । सगृहादी सब सप्तभङ्गीरूप  
 न्यायका अवतारण करते हैं । जैसे सगृहास्ति अर्थात् कोइरूप  
 करने है, सगृहास्ति अर्थात् कोइ रूपसे नहीं है, सगृहास्ति नास्ति

स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति  
चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यद्वयति ॥

तत् सर्वमनन्तवीर्यः प्रत्यपीपदत्—तद्विधान-  
विवक्षायां स्यादस्तीति गतिर्भवेत् । स्यान्नास्तीति  
प्रयोगः स्यात्तन्निषेधे विवक्षिते । क्रमेशोभय-  
वाङ्मया प्रयोगसमुदायभाक् । युगपत्तद्विवक्षायां  
स्यादवाच्यमशक्तितः । आद्यवाच्यविवक्षायां पञ्चमी-  
भङ्ग इत्यते । अन्त्यावाच्यविवक्षायां षष्ठभङ्ग-

पर्यात् कोइ रूपसे है जर नहीं, स्यादवक्तव्यं अर्थात् कोइ रूपसे  
है वा नहीं भैसा कहा जाय नहीं, स्यादस्ति अवक्तव्य अर्थात्  
कोइरूपसे अस्ति भैसा अवक्तव्य है, स्यान्नास्ति चावक्तव्य  
अर्थात् कोइ रूपसे नहीं भैसाभी अवक्तव्य है । स्यादस्ति  
नास्ति युगपदवक्तव्यं अर्थात् कोइ प्रकारसे अस्ति नास्ति भैसा  
एककालमें अवक्तव्य है । एही सप्तभङ्गीरूप नराय भगवान् अनन्त  
वीर्य इमप्रकारसे इनो का प्रतिपादन किया है । जहा विधिका  
विवय है वहाही प्रथम भङ्गका अवतरण होता है । जहा निषेधका  
विवक्षा है वहा द्वितीय भङ्गका अवकाश है । यथाक्रमसेती वासनाकी  
एककाल विवक्षा होनेसे समुदित तृतीय भङ्ग होता है । जर  
अर्थात् अस्ति नास्ति इनो का प्रयोग नहीं वहा चतुर्थ भङ्ग  
ज्ञानना । प्रथम नरायकी अवाच्यविवक्षा होनेसे पञ्चम नरायका  
प्रयोग होता है । अन्त्याकी अवाच्य विवक्षा होनेसे षष्ठ नरायका



समुद्भव । समुच्चयेन युक्तश्च सतमोभङ्ग  
 उच्यते इति । स्याच्छब्द खलुय निपात तिङन्त  
 प्रतिरूपकोऽनेकान्तद्योतक । यथोक्त वाक्येध्वने  
 कान्तद्योतिगम्य प्रतिविशेषणम् । स्यान्निपातोऽर्थ  
 योगित्वात्तिङन्तप्रतिरूपक इति ॥ यदि पुनरे-  
 कान्तद्योतक स्यात् शब्दोऽय स्यात्तदा स्यादस्तीति  
 वाक्ये स्यात्पदमनर्थक स्यात् अनेकान्तद्योतकत्वे  
 तु स्यादस्ति कथञ्चिदस्तीति स्यात् पदात् कथञ्चि-  
 दिति अयमर्थो लभ्यत इति नानर्थक्यम् । तदाह—  
 स्याद्वाद सर्वथैकान्ततागात् किञ्चित तद्विधे ।

समुद्भव होता है । जो एकवारही समुदायके अवाचकी विवक्षा  
 होनेसे सतम भङ्ग कथित होता है । यहा स्याच्छब्द करके  
 अनेकान्तद्योतक तिङन्त प्रतिरूपक अव्यय गृहीत होता है ।  
 इसमें प्रमाण वाक्यके मध्यमें प्रयोजित अव्यय शब्द प्रति विशेषणमें  
 अतीव विशद रूपसेती अनेकान्तद्योतक होनेसे अथयोगवशसेती  
 तिङन्त प्रतिरूप होता है । जो बोली कहा हुआ जो स्याच्छब्द  
 उधे एकान्तकात् द्योतकता होय तो स्यादस्ति इस वाक्यमें  
 जो स्याच्छब्द है वो अनर्थक होय । किन्तु अनेकान्तका द्योतक  
 होनेसे स्यादस्ति इसपदम कोइ प्रकारकेइ धैसी प्रतीत होता  
 है । फलमें स्यात् शब्दमें कथञ्चित् असाही अर्थलाभ होता  
 है । इसकी अनर्थकता नहीं । प्रमाण जैसे—जहा मध्य प्रकार

सप्तभङ्गिनयापेक्षो हेयादेयविशेषकृदिति । यदि  
 वस्तुस्थेकान्तत सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सर्वा-  
 त्मनास्तीति न उपादित्साजिहासाभ्या क्वचित्  
 कदा केनचित् प्रवर्त्तत निवर्त्तत वा प्राप्तप्रापणीयत्व-  
 हेयहानानुपपत्तेश्च अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चित्  
 क्वचित् केनचित् सत्त्वेन हानोपादाने प्रेक्षावतामुप-  
 पद्यते । किञ्च वस्तुन सत्त्व स्वभाव असत्त्वं वेत्यादि  
 प्रष्टव्यं न तावदस्त्वित्त्व वस्तुन स्वभाव इति समस्ति  
 घटोऽस्तीत्यनयो पर्यायतया युगपत्प्रयोगायोगात्

करके एकातका त्याग होय । बड़ाही स्यादाद प्रयोजित  
 होता है । एही स्यादाद सप्तभंगोरूप न्यायके सापेक्ष है ।  
 एव हीय उर उपादेय दोनु का पार्थक्यविधान करता है ।  
 जो वस्तु एकातही होय तो सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सर्वावयवमे  
 परिग्रह उर परिहार इन दोनोंका इच्छाक्रमसेती क्वचित्  
 कदाचित् किसका किया भया उर प्रवर्त्तित निवर्त्तित होने  
 सके नहीं किसवास्ते कि प्राप्तप्रापणीयत्व हेय हान इन सर्वाका  
 पनुपपत्ति होय । अनेकांत पक्ष में कथञ्चित् क्वचित् किस्का  
 किया परिग्रह उर प्रत्याख्याम उपपादित होनेका सभावना  
 होता है । फेर जिज्ञासा किया जाय । जो सत्त्व किवा  
 असत्त्व वस्तुका स्वभाव ? इस्के उत्तर कहने सके । अस्तित्व  
 वस्तुका स्वभाव नहीं किस वास्ते कि है उर घट है—एही  
 दोनु एकपथायविगित एककाल में इनका प्रयोग होने सके

नास्तीति प्रयोगविरोधाच्च एवमन्यत्रापि योज्यम् ।  
 यथोक्तम् । घटोऽस्तीति न वक्तव्यं सन्नेवहि यतो  
 घटः । नास्त्येत्यपि न वक्तव्यं विरोधात् सद-  
 सत्तयोरित्यादि ॥ तस्मादित्य वक्तव्यं सदसत् सद-  
 सद्निर्व्वचनोपवादभेदेन प्रतिवादिनश्चतुर्व्विधा  
 पुनरप्यनिर्व्वचनोपमतेनामिश्रितानि सदसदादि-  
 मतानोति चतुर्व्विधा तान प्रति किं वस्त्वस्तीत्यादि  
 पर्य्यनुयोगे कथञ्चिदस्तीत्यादि प्रतिवचनसम्भवेन ते  
 वादिनः सर्व्वे निर्व्विग्नान् सन्तु तुष्णीमासत इति  
 मम्युणार्थविनिश्चायिनः स्याद्वादमहो कुर्व्वतस्तत्र तत्र  
 विजय इति सर्व्वमुपपन्नम् ॥

नहीं विशेषतः नास्ति अर्थात् नहीं एकरूप प्रयोगके साथ विरोध  
 घटता है । इसी प्रकार उर जगोभी योजना करणे सके । इसी  
 वास्ते कहा है घट है ऐसा कहने नहीं सकी, कारण घट सत्  
 स्वल्प । उर नहींभी कहने सकी नहीं किसवास्ते नहीं कहनेसे  
 सत्त्व उर असत्त्वका विरोध घटनेसे । अर्थात् एक वस्तु है  
 उर फेर नहीं कभी ऐसा होने सकता नहीं । इस कारणसे  
 कहने सकते हैं सत् उर असत् सदसत् अनिर्व्वचनीय मतभेदने  
 प्रतिवादी चतुर्विध । फेरभी अनिर्व्वचनीयमत छोड़नेसे सत्  
 असत् उर सदसत् तिन प्रकारके होतेहैं । इर्गोको जिज्ञासा  
 क्रिया जाय वस्तु है क्या ? तो कथयित् है इत्यादि प्रतिवचन

यद्वोचदाचार्यं स्याद्वादमञ्जर्या । अनेकान्तात्मक वस्तु गोचर, सर्वसम्बिदान् । एकदेशविशिष्टोऽर्थो न यस्य विषयो मतः ॥ न्यायानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तौ श्रुतवर्त्मनि । सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वस्तु श्रुतमुच्यत इति ॥

अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्दयथा परं मतसरिणं प्रवादा । नयानशेषान् विशेषमिच्छन्नपक्षपातोसमयस्तयाहृत इति ॥

जिनदत्तसूरिणा जैन मतमित्यमुक्तम् । वलभोगोप-

संभावनामै वो सब निर्विण्य होके घुप कारके रहते है । स्याद्वाद स्वीकार करणे से अर्थ सम्पूर्णरूप करके अर्थ विनिर्णीत उर तन्निबधन सर्वत्र जयलाभ होता है । ए सवतोभावमे उपपन्न है । प्राचार्य स्याद्वादमजरोमे कहते है । जो वस्तु अनेकान्तात्मक वही सवन्नके विषयभूत है । जो एकदेश विशिष्ट वो किसाकेभी विषयभूत नहीं । एकदेशविशिष्टन्यायसमस्त प्रवृत्त हानसे जिस्तरके सम्पूर्ण अर्थ विनिश्चित होय, उसो ही श्रुतमार्गमे श्रुत कहते है । परस्परका पक्ष उर प्रतिपक्षभाय उपस्थित होनसे उर वादो-जैसा मातृसव्ये प्रकाश करतेहै, भगवान् अर्हत् देव उस्तरि जब करते नहीं , ए भगवान् अपक्षपाता । मत सकलका परस्पर विरोध दूर करनके वास्तंही इनो का उद्यम है ॥

भोगानामुभयोदानलाभयो । अन्तरायस्तथा निद्रा  
भोरज्ञान जुगुप्सितम् ॥ हिंसा रत्यरतो - रागद्वेषो  
रतिस्मर । शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादश दोषा नयस्य  
स ॥ जिनो देवो गुरु सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशक ।  
ज्ञानदर्शनचारित्र्याण्यपवर्गस्य वर्त्तिनि ॥ स्याद्वाटस्य  
प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च । नित्यानित्यात्मक  
सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा ॥ जीवजीवौ पुण्यपापे  
चास्त्रव सम्बरोऽपि च । वन्धोनिर्जरण मुक्तिरेषा  
व्याख्याधुनोच्यते ॥ चेतनालक्षणो जीव स्यादजीव-  
स्तदन्यक । सत्कर्मपुद्गला पुण्य पाप तस्य विप

शोजिनदत्तसूरि महाराजने जैन मत इस प्रकारमे  
व्याख्यान किया है जैसे बल, भोग, उपभोग, एव दान, उर  
लाभ एइ समस्तका अन्तरायभूत निद्रा, भय, अज्ञान उर जुगुप्सा,  
हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, रतिस्मर शोक, मिथ्याज्ञान  
एहो, अष्टादश दोष रहित भगवान् अर्हत् देव । गुरु जो है सो  
सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशक । ज्ञानदर्शन उर चारित्र्यही मोक्षका  
प्रकाशक । स्याद्वाटके दोष प्रमाण—प्रत्यक्ष, उर अनुमान ।  
सर्ववस्तुही नित्यानित्यात्मक है । तत्त्व नवभी है अथवा सातभी  
है । जैसे इनो के नाम—जीव१ अजीव२ पुण्य३ पाप४ आस्त्रव५  
सवर६ वध७ निजरट उर मोक्ष८ । अब इनो का व्याख्यान  
करतें हैं । जीवका स्वरूप चेतना । उर अजीव उससे विप  
रोतधर्मसम्पन्न है । सत्कर्म पुद्गलो की पुण्य कहत हैं । पाप

य्यय ॥ आस्रव कर्मणा वन्धो निर्जरस्तद्वियोजनम् ।  
 अष्टकर्मचयान्मोक्षोऽद्यान्तर्भावश्च कैश्चन ॥ पुण्यस्य  
 मस्रव पापस्यास्रवे ाक्रयते पुन । लब्धानन्त-  
 चतुष्कस्य लोका गूढस्य चात्मन ॥ क्षीणाष्टकर्मणो  
 मुक्तिर्निर्व्याहृतिर्जिनादिता । सरजोहरणा भैक्षभुजो  
 लुञ्चितमूर्धजा ॥ श्वेताम्बरा क्षमाशीला नि शङ्का जैन-  
 साधव । लुञ्चिता पिच्छिकाहस्ता पाणिपात्रा दिग-  
 म्वरा । अर्द्धाग्निरो गृहे दातुर्द्वितीया स्युर्जिनर्षय ॥

उससे विपरीत । आस्रव शब्द करके कर्मवधको हेतु । सवर  
 आते कर्मको रोध करना कर्मपुद्गलो का परस्पर आत्मप्रदेशो मे  
 वधन करनानुस्को वन्ध कहते हैं । तपस्यादिद्वारा कमको निज  
 रणा उसको निर्जरो कहते हैं । अष्टकर्मों का चय करणा मुष्को  
 मोक्ष कहतेहैं । उर कोइ कोइ आवाथ इस्को अन्तर्भाव कहत  
 हैं । आत्मा अनन्तचतुष्क लाभ करके अष्टविध कर्मों का  
 चययोगमे युक्त हाता है जिनराजके मतमें इस्को निव्वाण कह-  
 तेहैं । भैसा निव्वाण होनेसे फेर कभीनुस्को ससार होगा नही ।  
 जैनसाधुगण भिक्षाद्वारा निर्वाह करते हैं अथात् शरीर धारण  
 करतेहैं, मस्तक लुञ्चन करते हैं, श्वेत वसन उर क्षमाशील  
 होतेहैं । सर्व्ववस्तु से निर्लिप्त रहै । उर द्वितीय प्रकारमे  
 जो साधु है उनी को जिनर्षि कहते है । एसवभी मुडित  
 मस्तक उर पिच्छिकाहस्त । हात निजके पात्रहे उर नग्नहे,  
 एसव गृहस्थके घरमे दातारके हस्तद्वारा अर्द्धभोजन करते हैं ।

एकस्मिन्नसम्भवाटित्यधिकरणे रामानुजचरणै-  
श्वैवमाचक्षते ।

ते किल मन्यन्ते जीवाजावात्मक जगदेतन्निरौ-  
ष्वर, तच्च षड्द्रव्यात्मक, तानि च द्रव्याणि जाव-  
धर्माधर्मपुद्गलकालाकाशाख्यानि, तत्र जीवा वद्वा  
योगसिद्धा मुक्ताश्चेति त्रिविधा । धर्मी नाम गति-  
मता गतिहेतुभूतो द्रव्यविशेषो जगद्धापी, अधर्मश्च  
स्थितिहेतुभूतो व्यापी, पुद्गला नाम वर्णगन्धरसस्पर्श-  
वद्द्रव्य, तच्च द्विविध—परमाणुरूप तत्सघात-  
रूपञ्च पवनज्वलनसलिनधरणोतनुभवनादिक, काल-  
स्वभूदास्त भविष्यतीति व्यवहारहेतुरणुरूपो-  
द्रव्यविशेष, आकाशोऽप्येकीऽनन्तप्रदेशश्च । तेषु चाणु-  
व्यतिरिक्तानि द्रव्याणि पञ्चास्तिकाया इति च सगृ-  
ह्यन्ते, जीवास्तिकायो धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकाय  
पुद्गलास्तिकाय आकाशास्तिकाय इति । अनेक-  
देशवर्तिनि द्रव्येऽस्तिकायशब्द प्रयुज्यते । जीवाना  
मोक्षोपयोगिनामपरमपि सग्रह कुर्वन्ति । “जावा-  
जीवास्तववन्निर्जरसवरमोक्षा” इति मीक्षसग्रहणे  
मोक्षोपायश्च गृह्येत । स च सम्यग्ज्ञानदर्शनचा-  
रिवारूप, तत्र जीवस्तु ज्ञानदर्शनसुखवीर्यगुण, धजा-

वच्च जीवभोग्यवस्तुजातम् आस्रवस्तदुपभोगोपकरण  
 भूतमिन्द्रियादिक (१), वच्चष्टाष्टविध घातिकर्म  
 चतुष्टयमघातिकर्म चतुष्टयञ्चेति । तत्राद्य जीवगुणाना  
 स्वाभाविकाना ज्ञानदर्शनवीर्यमुत्माना प्रतिघात-  
 करणा, अपर शरीरसंस्थानतदभिमानतत्स्थिति-  
 ततप्युक्तसुखदुःखोपेक्षाहेतुभूत निर्जर मोक्षसाधन-  
 मर्हदुपदेशवगत तप, सम्बरो (२) ज्ञानेन्द्रिय-  
 निरोधिसमाधिरूप, मोक्षस्तु निवृत्तरागादिक्लेशस्य  
 स्वाभाविकात्मस्वरूपाविर्भाव पृथिव्यादिहेतुभूताश्च  
 नवो वैशेषिकादीनामिव न चतुर्विधा अपित्वेक-  
 स्वभावा । पृथिव्यादिभेदस्तु परिणामकृत सर्व  
 च वस्तुजात सत्त्वासत्तुनित्यत्वानित्यत्वभिन्नत्वाभि-  
 न्नत्वादिभिरनैकान्तिकमिच्छन्ति स्यादस्तीत्यादि सर्वत्र  
 सप्तभङ्गोन्यायावतारात् सर्व्व वस्तुजात द्रव्यपर्याया-  
 त्मकमिति द्रव्यात्मना सत्तुैकत्तुनित्यत्वाद्युपपादयन्ति  
 पर्यायात्मना च तद्विपरीत, पर्यायाश्च द्रव्यस्यावस्था-  
 विशेषा, तेषाञ्च भावाभावरूपत्वात् सत्त्वासत्तादिका  
 सर्व्वत्रमुपपन्नमिति ॥

१) लक्ष्मीनोपकरणभूतमिन्द्रियमिति पा ।

(२) सम्बरो ज्ञानेन्द्रियनिरोध इति पा ।



वहस्व कल्पगसम समन्तात्  
 कुरुष्व तापक्षतिमाश्रितानाम् ।  
 त्वद्वहसङ्गीर्णिकरा परास्ता-  
 हिसालमद्युक्तिक्लृष्टारिकाभि ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरय्ने पतञ्जलिनिरास  
 नामाष्टम पाद ॥

हे कल्पवृक्षरूपसिद्धान्तरय्ने भगवान्पहँतदेव विमुक्तसांग्यादि  
 रूप जी समस्त हिस्ररूपकण्टकलता आपकी परिवेष्टन करके  
 आपके प्रमारका प्रतिरोध करता या अब युक्तिरूप कुठारद्वारा  
 उनो को छेदन करके समभावमे मयप्रकारमे परिवर्हित होके  
 उर आश्रित जनो के आध्यात्मिकादितापव्यस्यसाधनकरके  
 आह्लादभावको प्राप्तकरो ।

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरय्ने व्याख्याने पतञ्जलि  
 निरासनामक अष्टमपाद ।

## नवम पाद ।

( उपसंहार )

प्रथमे मरुटव्यास्तु नाभेर्जात ऊरुक्रम ।

दर्शयन् वर्त्मधीराणां सर्वश्रमनमस्कृतमिति ॥

शुक्ल परमहमाना वर्म्म ज्ञापयितु प्रभु ।

व्यक्तगुणैर्गणित्वाद्दिव्यात् ऋषभाय्यया ॥

लोकानां सुखप्राप्तौ दुःखपरिहारि च प्रवृत्ति-  
रस्ति, किन्तु ते पुरुषस्य तत्रोपाय न जानन्ति, तेषां  
तत्तन्मिदये महर्षयस्त वदन्ति, महर्षयमत प्राक् प्रत्या-  
ख्यानात्, इटानीं पतञ्जलिमत दर्शयति । पत-  
ञ्जलिना पञ्चविंशतितत्त्वानि साङ्गोक्तान्येव स्वीकृतानि ।  
षड्विंशस्तु परमेश्वर क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्ट-  
पुरुष स्वेच्छया निष्मार्गकायमधिष्ठाय लौकिकवैदिक-

लोककीं सुखप्राप्तिमे उर दुःख परिहारमे प्रवृत्ति है किन्तु  
वे तहा उपाय नही जानते है । उनो के उम्का मिडिके वास्ते महर्षि  
उमका उपाय कहते है - कपिलाटिक मतका पहले प्रत्याख्यान  
किया है । अब पतञ्जलिका मत दिखति है । पतञ्जलिमे  
मायके कहने पद्योम तच्च स्वीकार किए है । यही समातो  
परमेश्वर क्लेशकर्म्मविपाकाशय करके अपरामृष्ट पुरुष स्वेच्छया

मम्प्रदायप्रवर्त्तकः ससाराङ्गारि तप्यमानाना पुरुषाणा  
 अनुग्राहकश्चेति विशेष । ननु पुष्करपत्नाशवन्नि  
 लेपस्य ताप कथमुत्पद्यते येन परमेश्वरगेऽनुग्राहक-  
 तया कक्षीक्रियते इति चेदुच्यते तापकस्य रजम  
 मत्तमेव तप्य बुद्ध्यात्मना परिणमते इति मत्तु परि-  
 तप्यमाने तमोवशेन तदभेदावगाहिपुरुषोऽपि तप्यत  
 इत्युच्यते । तदुक्तम्—सत्तु तप्यबुद्धिभावेन वृत्त भावा  
 ते वा राजसास्तापकास्ते । तप्याभेदग्राहिणी तामसी  
 या वृत्तिस्तस्या तप्य इत्युक्त आत्मा । इति चिच्छक्ता-  
 परपर्याया भोक्तृशक्तिरात्मा एव परिणामिण्यर्थ  
 बुद्धितत्त्वे प्रतिमक्षान्ते च प्रतिविम्बिते तद्वृत्तिमनु-

करके निमाण काय में अधिष्ठान करके भौतिकवैदिकमम्प्रदाय  
 प्रवर्त्तक ससाराङ्गारमे तप्यमानपुरुषो काऽनुग्राहक ण विशेष  
 है ननु पुष्करपत्नाशवन्नि लेप पुरुष को कैमे त प उतपन्न  
 होता है जिस्करके परमेश्वर अनुग्राहकता करके स्वाकार करते  
 हो ऐसा वादिने कहा तिसपर कहते है । तापकरजका मत्त्व  
 एव तप्यबुद्ध्यात्मा करके परिणत होता है मत्त्व परितप्यमान  
 होनेसे तमोवश करके तदभेद पुरुषभो तपता है ऐसा कहते  
 है । मत्त्वही सी तप्यहै बुद्धि वो भाव करके भाव राजम वेहो  
 ताप कहोते है तप्याभेदग्राहिणी जो तामसी वृत्ति तिसके  
 आत्मा तप्य है । चिच्छक्ति परपर्याया भोक्तृशक्तिरात्मा एव

भवतीति बुद्धो प्रतिविम्बिता सा चिच्छक्तियुद्धो-  
 च्छायापत्त्या बुद्धिवृत्तानुकारवतीति भाव । तथा  
 शुद्धोऽपि पुरुष प्रत्यय बौद्धमनुपश्यति तमनुपश्यन्न  
 तदात्मापि तदात्मक एव प्रतिभासत इति । इत्य  
 तप्यमानस्य पुरुषस्य विवेकाभ्यासवैराग्यपरिपाक-  
 पूर्वकेण आटरनैरन्तर्य्यदीर्घकालानुबन्धियमनियमा-  
 द्यष्टाङ्गयोगानुष्ठानेन परमेश्वरप्रणिधानेन च जनिता-  
 त्परमेश्वरप्रसादात् सत्त्वपुरुषान्यथाख्यातावनुपपन्नाया  
 जातायामविद्यादय पञ्चक्लेशा समूलकाप कर्षिता  
 भवन्ति कुशलाकुशलाश्च कर्माशया समूलघात

परिणामो अर्थ मे बुद्धितत्त्वमे प्रतिमक्रान्त होनेसे उस्की त्रक्तिकी  
 ऽनुभव करता है । बुद्धिमे प्रतिविम्बित वो चिच्छक्ति बुद्धी  
 च्छायापत्ति करके बुद्धिवृत्तानुकारवानी होता है ए भाव । तैसे  
 शुद्धभी पुरुषप्रत्यय बौद्धप्रति देखताहै उस्की देखताथ को आत्मा  
 भी तदात्मक प्रतिभासता है ॥

इसप्रकारतप्यमानपुरुषका विवेकाभ्यासवैराग्यपरिपाक-  
 पूर्वक करके आटरनैरन्तर्य्यदीर्घकालानुबन्धियमनियमादि अष्टाङ्ग-  
 योगानुष्ठान करके परमेश्वरप्रणिधानमे उत्पन्न भया परमेश्वरके  
 प्रसादमे सत्त्वपुरुषान्यथाख्याति अनुपपन्न होनेसे अविद्याद्विपञ्च-  
 क्लेशमूलसे कर्षिता होती है कुशल प्रकुशल कमाशय समूलघात

हता भवन्ति । ततश्च पुरुषस्य निर्लेपस्य प्रमाणादि-  
पञ्चविधचित्तवृत्तिनिरोधादेव असम्प्रज्ञातसमाधि-  
रूपेण कैवल्येनावस्थान कैवल्यमिति सिद्ध । अस्या  
अपि निरमन पूर्ववदेव ।

य भाव दर्शयेद् यस्य त भाव म तु पश्यति ।

तच्चारति स भूत्वामौ तदग्रह समुपैति तम् ॥

कि बहुना, प्राणादीनामन्यतममुक्तमनुक्त  
वाऽन्य य भाव पदार्थ दर्शयेद्यस्याचार्य्योऽन्यो वा  
सुप्त इदमेव तत्त्वमिति स त भावमात्मभूत पश्यत्यय-  
महमिति वा मामिति तच्च द्रष्टार स भावोऽर्वाति यो  
दर्शितो भावो स भूत्वा रक्षति स्वेनात्मना सर्वतो  
निरुणाद्धि तस्मिन् यहास्तदग्रहास्तदभिनिवेश । इद-

ज्ञत होत है । तिससेती निर्लेप पुरुषका प्रमाणादि पञ्चविध  
चित्तवृत्ति निरोधसेती असम्प्रज्ञात समाधिरूप करके कैवल्यकरके  
अवस्थान उसीको निर्वाणमुक्ति कहते ह । इसका भी खण्डन  
पूर्ववत् जानना । क्या बहुत प्राणादिको का अन्यतम उक्त वाऽनुक्त  
जो भाव पदार्थ दिखावे जा आचार्य्य एही तत्व है, वो उस भाव  
प्रति आत्मभूत देखता है ऐ हमवा मेर उक्त इति तिस देखने  
वालेका वो भाव सोहो करके रक्षित होता है सर्वसेती रोकता  
है तस्के विषे अह तदग्रह तस्काऽभिनिवेश एहो तत्त्व है । उसके

मेव तत्त्वमिति स त गृहीतारमुपैति तस्यात्मभाव  
नियच्छतीत्यर्थ ।

ननु विप्रवन् मटमद्भिन्नम् । औपनिषदमपि  
ब्रह्म सर्वशब्दावाच्यमित्यादि श्विकुड जल्पन् जैन-  
सखो मायी चेति नोपयुज्यते प्रपञ्चमिथ्यात्ववादिनो  
नास्तिरुत्व, मायावादममच्छास्त्र प्रच्छन्न बौद्धमुच्यते  
इत्यादि स्मरणाच्च ।

ननु न वय खुपुष्यवत्तस्य मिथ्यात्व व्रूम व्यव-

ग्रहणकरनेवालेको प्राप्त होता है तिसका आत्मभावको देताहै ।  
जा प्रपञ्चका साध्याम्नित्व मिथ्यात्व कु साधन करता है,  
उम्कु वेदाप्रामास्यापत्ति हीगा यतो इमानीत्यादि । अग्नि-  
होत्रादिकग्नेतत्परवाक्यसमूहका तिम विषय करके प्रमाण  
सेति । विषयाभावमे ए बन्ध्यापुत्र जाता ह इत्यादि वाक्य  
समानसेती । तद फेर नास्तिकतापत्ति होय । ननु विप्रव सत्सत्  
।भव उपनिषद ब्रह्म सर्वशब्दावाच्य इत्यादि श्विकुड योजिता  
हुवा जैनसखा मायी न उपयुक्त होता है । प्रपञ्चका मिथ्यात्व  
वालनेवालेका नास्तिकत्व स्मरण होता है । एही लिखा है ।  
मायावाद असत् शास्त्र हे प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाताहै ए पहनी  
दिखाया है ।

युक्तिके आभास करके मायी अद्वैतवादी फेर प्रत्यवस्थित  
होताहै हम प्रपञ्चको आकाशके फुल कीतर मिथ्या नहीं

हारिकसत्तास्वीकारात् तेन न वेदाप्रामाण्यं नापि  
नास्तिकतापत्तिरिति चेन्न अनवधानात् । तत्राहि  
द्विविधं खलु सत्यं पारमार्थिकमपारमार्थिकञ्च ।  
तत्रान्यं द्विविधं व्यवहारिकं प्रातीतिकञ्च । तदंतत्  
मत्यासत्यचतुष्टयं क्रमाद् ब्रह्मप्रपञ्चशक्तिरौप्येषु  
वर्तते । तत्र व्यवहारिकसत्यस्य प्रपञ्चे अङ्गीकारात्  
न तद्वोधिवेदाप्रामाण्यम् । पारमार्थिकसत्यत्वा-  
भावात् तु तस्य मिथ्यात्वमिति हि मतम् । तदेतद-

यान्तं हे । कारण उम्का व्यवहारिक सत्ता स्वीकार करते हैं ।  
इमवास्ते वेदकाऽप्रामाण्यं या हमलोकों को नास्तिकता नहीं  
घटता है ए वात बोलने नहीं सकते हो । नहींभी तोमहारी  
अनवधानता प्रकाश होती है , दोषका उदार नहीं होता है ।  
देख तुमार मतमें, सत्य दो प्रकार पारमार्थिक उर अपारमार्थिक  
सत्य । अन्यके फेर दीय भेद । व्यवहारिसत्य उर प्रातीति  
सत्य । बोही सत्यामत्यचतुष्टय क्रमान्वयके विषे ब्रह्म, प्रपञ्च, शक्ति  
उर रचतमें देखा जाता है, तिममें अपारमार्थिक वा व्यव  
हारिक सत्य उर प्रपञ्चके विषे अङ्गीकृत होता है । इस हेतुमें  
व्यवहारिक सत्य उर प्रपञ्चका बोधक वेदवाक्यका अप्रामाण्य  
ज्ञाता नहीं । उर पारमार्थिक सत्य के अभावहेतु प्रपञ्चका  
मिथ्यात्वभी स्थिर है । एही तुमारा मत किन्तु ए मत अयुक्त

युक्तम् । वाध्यार्थबोधकतया वेदाप्रामाण्यानुद्धरात्  
वाध्यो हि प्रपञ्च । यदुक्तम् । तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थ-  
मस्यगृधो जन्ममावत । अविद्या सह कार्याण  
नामोदस्ति भविष्यतीति ।

नापि स च द्वैविध्यस्वीकृत्या वाच्येभ्यो वैल-  
नग्यम् । तैरपि तस्याङ्गोक्तात् । यदुक्तम् मत्वन्तु  
द्विविध प्रोक्त मावृत पारमार्थिकम् । सावृत  
अवहार्यं स्यान्निरवृत्तौ पारमार्थिकम् । हे मत्वं

होता है । कारण वाधित जो व्यवहारिकमत्प्रपञ्च उम्का  
बोधक जो वेदवाच्य उम्के अप्रामाण्यका उद्धार नहीं ।  
प्रपञ्चका वाध्यत्व रुहाही है । जैसे तत्त्वमसि आदि वाक्यका  
अर्थ मस्यक् जात होनेसे काव्यभूत प्रपञ्चको महित कारण  
भूत अविद्याका लोप होता है ।

चोती वीडतापत्तिनाञ्जनास्तीति सायानिनाञ्जनानिष्ट  
त्तिकषाम्ने मत्प्रदय स्वीकार किया तत्रापि लाञ्जनानिस्तार  
नही अर्था कहती है । मत्प्रका द्वैविध्य स्वीकारसेभी याज्ञ वीड  
मतमें ती सायावाटका कीर् धनक्षण टिप्पणा नही गया ।  
कारण वीड बोधी स्वीकार करते है । तिमके सम्बन्ध में उक्ति  
अर्था है, मत्वं द्विविध ममत १ उर पारमार्थिक = संवत  
गण्टका अर्थ व्यवहार । निरवृत्तिपक्ष में ही पारमार्थिक ऐसी



समुपाश्रित्य बौद्धाना धर्मचोटना । लोके साव्रत  
 सत्यञ्च सत्यञ्च पारमार्थिकम् । विचार्यमाणे नासत्य  
 सत्यञ्चापि प्रतीयते । यस्य तत साव्रत सत्य व्यव  
 हारपट च तदिति । तस्मान्न तेभ्यस्तत । अपिच  
 सत्यशब्दो न नानार्थे सत्वभेदे प्रमाणाभावात् ।  
 यदि सत्यशब्दस्य परमार्थवाच्यतयार्थभेद स्यात्तदा  
 मदाकारानुगतप्रत्ययानुपपत्ति । नानार्थमैश्ववाटि-  
 पदे तददर्शनात् । सृष्टामदिति वदतोव्याघाताच्च ।

नोमत को आश्रय करके ही बौद्धों के धर्मकी चोटना है ।  
 महत्तमस्य लौकिकपारमार्थिक सत्यके विचारमें सत्यका सत्व-  
 रूपमें ही प्रतीति होता है । जिसका वही सत्य आवृत रहता है  
 उम्के सम्बन्धमें सत्यका व्यवहारिकता इमहेतुमेंही बौद्ध  
 संप्रदाय सेती मायावादीका कुबलो वैनक्षण देखा नहीं जाता  
 है । अब सत्य शब्दका नानार्थकता खण्डन करते हैं । उर  
 सत्य शब्द नानार्थकभीनही है सत्यके भेदमें प्रमाण नहीं  
 यदि सत्यशब्दमें मिथ्यायभी सत्यार्थको बोध कराया तब  
 उम्का अर्थ भदभी घटे इत्तर अर्थ भेद घटनेमें मदाकार जो  
 अनुगतप्रत्यय तिस्की अनुपपत्ति होय । नानार्थक मैश्ववाटि  
 पदमें एकाकार अनुगतप्रतीति देखा नहीं जाता है विज्ञेय  
 सेती मिथ्याको भय बोधनेमें अपने उक्तिकाही व्याघात

तस्मात् सावृतशब्दवन्मृषार्थके व्यवहारिकशब्दो प्रता-  
रणाय प्रयुक्त इति सत्यसामान्ये व्यवस्था नोपपन्ना ॥

स्यादेतत् ब्रह्मसत्तेन प्रपञ्चसत्त्वात्तेन वेद-  
प्रामाण्ये । तदन्यसत्ताभावाच्च मृषात्वोक्तिर्नतु नि स्व-  
रूपत्वात् । नेह नानास्तिकिञ्चनेति श्रुतिरपि तदन्य-  
सत्ता निषेधपरा । न चातिप्रसङ्गं कानकमुकुठयो-  
रिव उपादानोपादेयभावस्य नियामकत्वात् ।  
इतरथा सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यत्र सामान्याधिकरण्योप-

होता है । इस हेतुसे ही सावृतशब्दकी तरे । मृषार्थक व्यवहारिक  
शब्द प्रतारणाके निमित्त प्रयुक्त हुआ है । एही समझा जाता  
है । इस हेतुसे सत्यसामान्य व्यवस्था उपपन्न नहीं होता है ॥

निरस्तोऽपि माया निर्नञ्ज फेर प्रत्यवस्थित होता है ।  
ब्रह्मका सत्ता में ही प्रपञ्चका सत्ता है । इस प्रकार तज्जन्य  
ही वेद का प्रामाण्य है ब्रह्मभिन्न अन्य वस्तुका सत्ताके अभाव  
हेतु प्रपञ्चका मिथ्यात्वकथन , नि स्वरूपत्वके वशसे ही प्रपञ्चको  
मिथ्या कहा जाता नहीं । “नेह नानास्ति किञ्चन” इत्यादि  
श्रुतिसे ब्रह्मभिन्न सत्ता का निषेध करता है ब्रह्मसत्ता प्रपञ्चकी  
सत्तामें घट सत्ता पटकी सत्ता का अतिप्रसङ्ग होता नहीं ,  
कारण कानक उर मुकुटके न्याय उपादान उपादेय भावही उक्ता  
नियामक है । जहाँ उपादान उपादेय भाग नहीं, वहाँ एककी

पक्षये तज्जत्वाद्यनुपपत्तिरिति । इदमप्यपेशल लोटा  
 क्षमत्वात् । तथाहि ब्रह्मसत्त्विति किं ते विवक्षितम् ।  
 किं ब्रह्मनिष्ठा सत्ता किं ब्रह्मस्वरूपा सा उत ब्रह्मभेद  
 आहोमित्यत्र ब्रह्मव्यतिरेकेणाभावः ? आद्ये सा पारमा-  
 र्थिकी वाध्या वा ? प्रथमेऽपिमिहान्तापत्तिर्यदिष्ठान-  
 ज्ञानबोधस्य धर्मस्य ब्रह्मण्यस्वीकारात् पारमार्थिकसत्तो-  
 पेतस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मवत् सत्यत्वञ्च । न च तत्सत्त्वेऽपि

सत्ता में अन्यका सत्ता घटता नहीं अन्यथा सर्ववस्तु इदं ब्रह्म इमो  
 स्थलमें समानाधिकरणके उपपादनार्थं जो समस्तको ब्रह्मन्य  
 उर ब्रह्माधीन आदि बोलके युक्ति प्रदर्शन किया होय उस्का  
 असंगति घटे । पूव पक्षका ए प्रकार युक्ति सुचारु नहीं ,  
 कारण वो विचार सहन नहीं कर सकता है । प्रतिवात्के  
 प्रति जैनमिहान्त पुछता है पूवपक्षके मतमें ब्रह्मसत्ता कह मे  
 क्या बोध होता है ? उस्का अर्थ क्या ? ब्रह्मनिष्ठा सत्ता  
 ब्रह्मस्वरूपा सत्ता ब्रह्मभेद सत्ता या ब्रह्मातिरिक्त के अभाव को  
 इ सत्ता । ऐसे पूर्वपक्ष रचना करके उनको खगडन करता है ।  
 ब्रह्मसत्ता कहनेमें जो ब्रह्मनिष्ठा सत्ता कहा होय तो अब फिर  
 जिज्ञासा होता है । वो सत्ता पारमार्थिकी अथवा वाध्या ?  
 उस्को पारमार्थिकी कहनेमें अपमिहान्तापत्ति होय । कारण  
 अधिष्ठान ज्ञानद्वारा बोध जो धर्म वो ब्रह्ममें स्वीकृत होता  
 नहीं विग्रेय भेती पारमार्थिक सत्ता विगिष्ट प्रपञ्चका ब्रह्म के

स्वरूपाभावात्सत्यत्व पारमार्थिकमत्तोपेतस्य धर्मस्य  
 कुत्रापि तददर्शनात् सत्तोपेतस्यैन्मृषामृषाचेन्न सत्तो-  
 पत । सत्तासामान्यशून्यापि सत्तामतीदृष्टा सत्तोपेतो-  
 ऽप्यसन्नदृष्टचर । किञ्च समानाना भाव सामान्यं  
 यत् सत्ताशब्देन उच्यते न च तत् मृषासत्तयो  
 मभवत् । यदुक्तं सत्तत्वं न च सामान्यं मृषार्थ-  
 परमार्थया । विरोधान्न च वृत्तत्वमामान्यं सिद्ध-  
 वृत्तयोरिति ॥ न चैतरं वेदाप्रामाण्यानुदारात् ।

तुय सत्यत्व घटे । अथात् वही सामान्य रहनेमें भी स्वरूप  
 सता उक्ताऽभाव हेतु असत्यत्वहो कहा जायगा, असा उक्ति  
 महत्त होता नही । जिस हेतु में पारमार्थिक सत्ता विगिष्ट  
 धर्म का कहा भी स्वरूपाभाव देखा नहीं जाता है । जो सत्ता  
 विगिष्ट, वा जो मिथ्या होय, तब अवश्य ही वह सत्ता विगिष्ट  
 नहीं सत्ता सामान्य शून्य सत्ता का अस्तित्व ही प्रतीत होता  
 है, किंतु सत्ताविगिष्टका अस्तित्व कभी भी प्रतीत होता  
 नहीं अधिकन्तु समान-जा भावरूप जो सामान्य, उक्तो सत्ता  
 शब्द ऋके निदृश किया जाय सो कभी भी मिथ्या अर्थात्  
 प्रपञ्चका उर सत्य अथात् वृत्त का सवध सभव होता नहीं  
 मृषाय में भी परमार्थका सत्यत्व होय, किंतु सामान्य होता  
 नहीं । परस्पर विरोधसे ता सिद्ध उर वृत्तका वृत्तत्व सामान्य  
 ज्ञाता नहीं एइ प्रकार द्वितीय पक्षभी महत्त होता नहीं ।

पक्षे तज्जत्वाद्यनुपपत्तिरिति । इदमप्यपेशल छोटा  
 क्षमत्वात् । तथाहि ब्रह्मसत्त्विति किं ते विवक्षितम् ।  
 किं ब्रह्मनिष्ठा सत्ता किं ब्रह्मस्वरूपा सा उत ब्रह्मभेद  
 आहोस्वित ब्रह्मव्यतिरेकेणाभावः ? आद्ये मा पारमा  
 र्थिकी बाध्या वा ? प्रथमेऽपमिहान्तापत्ति अधिष्ठान-  
 ज्ञानबोधस्य धर्मस्य ब्रह्मण्यस्वीकारात् पारमार्थिकसत्तो-  
 पेतस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मवत् सत्यत्वञ्च । न च तत्सत्त्वेऽपि

सत्ता मे प्रत्यक्षा सत्ता घटता नहीं अन्यथा सबवस्तु इदं ब्रह्म इमी  
 म्यन्तमे ममानाधिकरणके उपपादनाय जो ममसत्ता ब्रह्मपन्थ  
 उर ब्रह्माधीन आदि वोलके युक्ति प्रदर्शन किया होय, उस्का  
 असंगति घटे । पूर्व पक्षका ए प्रकार युक्ति सुचारु नहीं  
 कारण वा विचार सहज नहीं कर सकता है । प्रतिवादोके  
 प्रति जैनसिद्धांत पुष्टता है प्रवेपक्षके मतमे ब्रह्मसत्ता कह मे  
 क्या बोध होता है ? उम्का अर्थ क्या ? ब्रह्मनिष्ठा सत्ता  
 ब्रह्मस्वरूपा सत्ता ब्रह्मभेदइ सत्ता वा ब्रह्मातिरिक्त के अभाव को  
 इ सत्ता । ऐसे पूर्वपक्ष रचना करके उनको खण्डन करता है ।  
 ब्रह्मसत्ता कहनेमे जो ब्रह्मनिष्ठा सत्ता कहा होय ती अब फिर  
 जिज्ञासा होता है । वो सत्ता पारमाधिकी अथवा बाध्या ?  
 उस्को पारमाधिकी कहनेमे अपमिहान्तापत्ति जाय । कारण  
 अधिष्ठान ज्ञानहास्य बोध जो धर्म वो ब्रह्ममे व्योक्त होता  
 नहीं विशेष मतो पारमार्थिक सत्ता विगिह प्रपक्षका ब्रह्म के

स्वरूपाभावाद्मत्त्वत्व पारमार्थिकसत्तोपेतस्य धर्मस्य  
 कुत्रापि तददृशनात् सत्तोपेतश्चेन्मृषामृषाचिन्न सत्तो-  
 पेत । सत्तासामान्यशून्यापि सत्तासत्तीदृष्टा सत्तोपेतो-  
 ऽप्यसन्नदृष्टचर । किञ्च समानाना भाव. सामान्यं  
 यत् सत्ताशब्देन उच्यते न च तत् मृषासत्तयो  
 भवत् । यदुक्त सत्त्व न च सामान्यं मृषार्थ-  
 परमार्थया । विरोधान्न च दृष्टत्वसामान्य सिद्ध-  
 दृष्ट्यर्थारिति ॥ न चैतर. वेदाप्रामाण्यानुहारात् ।

तुल्य सत्यत्व घटे । अथात वही सामान्य रहनेसे भी स्वरूप  
 मता उक्ताऽभाव हेतु अमत्यत्वही कहा जायगा, ईसा उक्ति  
 मद्गत होता नहीं । जिस हेतु से पारमार्थिक सत्ता विशिष्ट  
 धर्म का कही भी स्वरूपाभाव देखा नहीं जाता है । जो सत्ता  
 विशिष्ट, वा जो मिथ्या होय, तब अवश्य ही वह सत्ता विशिष्ट  
 नहीं सत्ता सामान्य शून्य सत्ता का अस्तित्व ही प्रतीत होता  
 है, किन्तु सत्ताविशिष्टका अस्तित्व कभी भी प्रतीत होता  
 नहीं अधिकन्तु समानका भावरूप जो सामान्य, उक्ती सत्ता  
 गद्द करके निश्चय किया जाय सो कभी भी मिथ्या अर्थात्  
 प्रपञ्चका उर मत्य शब्दात् दृष्ट का सवध समव होता नहीं  
 मृषार्थ से नो परमार्थका सत्यत्व होय, किन्तु सामान्य होता  
 नहीं । परम्पर अवराधसे तो सिद्ध उर दृष्टका अस्तित्व सामान्य  
 होता नहीं एव प्रकार, द्वितीय पक्षभी सङ्गत होता नहीं ।

न हि बाध्यसत्ताबोधक प्रमाण । किंचाम्बिन् पक्षे  
 ब्रह्मणोऽसत्यतापत्ति । बाध्यमत्त्वयोगात् । वेदा-  
 प्रामाण्य निर्विषयत्वात् । न च सत्ताभावेऽपि सद्वृ-  
 त्वात् ब्रह्मणोऽसत्यतापत्ति । तद्वत् प्रपञ्चस्यापि  
 तदनापत्ते स देवसौम्येदमित्यादिना तस्यापि सद्वृ-  
 त्तश्रवणात् । यत्तु दीर्घभ्रमजनकत्वात् वेदस्य  
 प्रामाण्य तन्मन्द ततो नोलिमचन्द्राल्पत्वज्ञानजनक-  
 स्यापि तथात्वात् ॥

कारण उर्ध्व वेदकाऽप्रामाण्यका उद्धार होता नहीं । बाध्य  
 सत्ता कभी भी बोधक प्रमाण होने नहीं सकता । विशेष  
 सेती एइ पक्षमें ब्रह्मका असत्यतापत्ति घटे । कारण, इसमें बाध्य  
 सत्ताके साथ ब्रह्मका योग हेतुक उलऽनिष्ट घटना है । अब  
 निर्विषयता प्रयुक्त वेदकाऽप्रामाण्य घटता है । जैसे सत्ता  
 भावमेंभी सद्वृत्त हेतु ब्रह्मका असत्यत्व घटता नहीं तद्वृ-  
 त्तप्रपञ्चका भी असत्यत्व घटता नहीं, कारण, “स देव सौम्येदमग्र  
 आसीत्” प्रभृति श्रुतिमें प्रपञ्चका भी सद्वृत्त श्रवण किया  
 जाता है । एइ रूप जो भूत सीमा उत्तम नहीं । दीर्घ  
 भ्रमजनकत्व हेतु वेदवाक्यका प्रामाण्य वीलना उचित होता  
 नहीं, कारण वो होनेसे नोलिमचन्द्राल्पत्व ज्ञानका जनक जो  
 वस्तुओं भी प्रामाण्य स्वीकार करण होगा ॥

नापि ब्रह्मस्वरूपेति द्वितीय । अवाधितसत्ता-  
योगेन प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वामिद्वे । न तु तृतीय ।  
विरुद्धयोस्तयोरैक्यानुपपत्ते । न च चतुर्थ । सर्व  
खल्विदमित्येकार्यानुपपत्ते । न हि तदभावे तदेकार्य-  
सम्भवः । न च यथैव स स्यात्पुरितिवत् वाध-  
दशाया तदितिवाच्य वेदाप्रामाण्यानिस्तारदिति ।  
अपिच मायिना दृष्टिसृष्टि स्वीकृता दृष्टिसमया सृष्टि-

दूसरा पक्षमें दूषण दिखाते हैं । सत्ताका ब्रह्मस्वरूपत्व  
रूप दूसरा पक्षभा युक्त होता नहीं । कारण, अवाधित सत्ताके  
योग हेतु प्रपञ्चका मिथ्यात्व असिद्धि होय । तृतीय पक्षभी  
सङ्गत होता नहीं, जिस हेतुसे परस्पर विरुद्ध ब्रह्म उर ब्रह्ममेद  
रूप प्रपञ्चका ऐक्य अनुपपन्न होता है । चतुर्थ पक्षभी स्वीकार  
होता नहीं, जिस हेतुसे ब्रह्म व्यतिरिक्तकाऽभावकी सत्त्व  
कहनेसे, “सर्वे खल्विदं ब्रह्म” इस वाक्य का एकार्थता अनुपपन्न  
होय ब्रह्मव्यतिरिक्तके अभाव के साथ ब्रह्मका सामानाधिकरण्य  
ही सम्भव होता नहीं । ‘जा घौर, सो स्यात्’ ए वाक्यके न्याय  
वाधक दशामें सामानाधिकरण्य भी कहा जाय नहीं, कारण  
उसमें वेदका अप्रामाण्य का निस्तार होता नहीं । उरभी  
मायावादी कर्तृक दृष्टि सृष्टि स्वीकृत होती है । सृष्टि दृष्टिसमया  
दृष्टि सृष्टिसमया नहीं अर्थात् जब दृष्टि तब सृष्टि, जब सृष्टि तब  
दृष्टि नहीं । दृष्टि केऽभावमें सृष्टिकाऽभाव, सृष्टिकेऽभावमें दृष्टि-



रिति । माचैषा क्षणिकविज्ञानपत्तं नातिवर्त्तते  
तत्रार्थानामर्थात् क्षणिकत्वात् । नचात्र क्षणिक  
विज्ञानमात्रमस्तीति स्वीकारात् ततोभेदस्तत्र  
प्रमाणाभावात् दर्शितं चैतत् प्राक् ॥

किञ्च मायिमत्तं शून्यवादान्नातिरिच्यतेऽविद्या-  
वच्छिन्नं ज्ञानं महत्तावच्छिन्नं शून्यं च । सर्वज्ञान-  
मिति शून्यमिति च भावनाप्रकर्षादविद्यायां सं-  
वृत्तेश्च विनाशे सति ज्ञानमात्रं शून्यमात्रं चावशिष्यते ।

काऽभाव नही । एइ दृष्टिं छट्टि क्षणिक विज्ञान पक्षकोऽतिक्रम  
नही करता क्षणिकविज्ञान शब्दमे अथ ममस्त क्षणिक बोलके  
स्वोक्त होत हे, अद्वैतवादमे क्षणिक विज्ञान अथात् नित्य  
विज्ञानमात्र ब्रह्मकाऽस्तित्व स्वीकृत होता हे । बोलके उक्त  
क्षणिकविज्ञानवादसेती अद्वैतवादका भेद होता ह । अंमा  
बोला जाता नही । कारण निर्गुण चिन्मात्र नित्य वस्तुकाऽ-  
स्तित्व प्रमाण प्राप्त होता नही । ए पहला दिखाया हे ।

अथ माध्यमिक बुद्धशिष्य मतावलवित्व । अथ माध्यमिक  
बुद्धका शिष्य मत अवलवन निर्गुणविद्वैतवादाका दिखात ह ।  
उरभो मायावादी का मत शून्यवाद मेता जुदा नही । अविद्या-  
वच्छिन्न जा ज्ञान सा महत्तावच्छिन्न उर शून्य सकलज्ञान एव  
शून्य इस प्रकार भावना का प्रकप हेतु अविद्या उर सृष्टि का  
विनाश जानेमे ज्ञानमात्र शून्यमात्र अवशिष्ट रहता ह । काय

कार्यनाशस्य कारणरूपत्वात् सैव मुक्तिः । तस्य तस्य च परमासान्यरूप सत्त्वं भावप्रतियोगिकत्वरूपमसत्त्वं अनुकूलवेद्यत्वरूप सुखत्व प्रतिकूलवेद्यत्वरूपं दुःखत्वञ्च नास्ति किञ्च यद्वास्तव नास्ति उभय निर्लेपमत्रर सम बाध्य सर्वमानावेद्यं स्वयं प्रभावत । ननु वेद्यत्वे सत्त्परोक्षव्यवहारार्हत्वमनन्याधीनापरोक्षत्व वा ब्रह्मण स्वप्रकाशत्व । तच्च न शून्यस्यास्तीति कथमुभयोर्मान्यमिति तुच्छमेतत् । अपरोक्ष हि स्वनैव

कारण नाश ही कारण नाश स्वरूप वही मुक्ति । विज्ञानमात्र का उर शून्यभाव का पराजिता के न्याय मत्ता नही वा मत्तामात्र का तादृशपणा अर्थात् भाव प्रतियोगिकाभावरूपत्व भी नही । अनुकूलवेद्यत्वरूप सुखत्व उर प्रतिकूलवेद्यत्वरूप दुःखत्व भी उनके नही ये इस हेतुमे उनोका सब प्रमाण गीचरत्व तुल्य ही होता है । उर जो वस्तु सेती नही अमे ही उभय ही निर्निर्म अत्रर अमर सम बाध्य सर्वमानावेद्य उक्त प्रकाशस्वरूप । उनका तुल्यत्व अवश्यव स्वोकार्यः ।

अब माध्यमिकसेती अपना वैलक्षण्य कहने कु भायो प्रवृत्ति करता है जो बोल्ते ब्रह्मका वही स्वप्रकाशत्व उर वेद्यत्व रहते भी अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्व या अनन्याधीनाऽपरोक्षत्वं दोनमे जो ही होय शून्यवादपक्षमे समव होता नही इस हेतु सेती वही धर्म उभय के पक्षमे किस्तरमे मान्य किया जाय ३५ ए५

स्वविषयकमन्यविषयक वा । नाद्य स्वविषयक-  
ताया मायिनाऽनङ्गीकारात् । अङ्गीकारे वा चिद्विष-  
यकत्वेऽपि स्वरूपदृश्यत्वापत्त्या ब्रह्मणोमिथ्यात्वापत्ति-  
र्विषयत्वाविषयत्वाभ्या वैशिष्ट्यापत्तिश्च नैतर मोक्षेऽ-  
न्याभावेनान्यविषयापरोक्षमद्भावात् । तस्मात् शून्य-  
सहस्यो पर्यायतयैः ज्ञानायेऽ विद्ययोःस्थितिरिति

जो मायावादी तुमारा पूवपक्ष मो तुच्छही होता है, कारण  
अपरोक्ष बोलने से अवश्य अपणा प्रत्यक्ष का विषय व समझते  
होगा । जो बच्चे हूवा तब बोही प्रत्यक्षविषयता स्वविषयक  
अर्थात् ब्रह्मविषयक वा अन्यविषयक वा तदन्य जीवविषयक  
बोला जायगा मायावादी कभी भी उम्का स्वविषयकता स्वीकार  
करने चाहता नहीं । इस हेतु से प्रथम पक्ष स्वीकार करा  
नही जायगा जो कोइ गतिमें वो स्वीकार किया होय तो  
बच्चे स्वविषयक पदमें चिद्विषयता ही समझा जायगा ।  
चिद्विषयकपरोक्षमें स्वरूपका दृश्यतापत्ति होय जैसे तिम्रें  
अदृश्य वस्तु दृश्य होनेसे ब्रह्मका मिथ्यात्वापत्ति घटे विशेष सेती  
विषयत्व उरअविषयत्व ब्रह्मका वैशिष्ट्यापत्ति दोष होता है एरूप  
दूमरा पक्षभी संगत नहो कारण मोक्षमें अथात् जीवकाऽभाव  
हेतु तद्विषयकऽपरोक्षज्ञानकाऽथात् प्रत्यक्षकाऽमद्भाव होय इस  
हेतुसे शून्य तु सत्ति दोनूका पर्यायता द्वारा ज्ञानका निमित्त  
ही विद्यालयकी स्थिति स्वीकार करणा होता है सुतरा माया

मायो माध्यमिक एव । वेदातानामखडार्थबोधकत्व  
समर्गागोचरप्रमाणकत्व स्वीकुर्वता मायिना मत्य-  
ज्ञानमनन्तमित्यत्रासज्जडपरिच्छिन्नव्यावृत्त ब्रह्म-  
स्वरूपमेव तथेति व्याख्यात । यथा गौरगोव्यावृत्त्या  
इत्यादिकं शून्यवादिना बोद्धेन । जैनसाधर्म्यं जैमिनि-  
ना रिताकृत वेदोक्तैः शुभकर्मभिः दुःखहानि सुख-  
लाभश्चेति जैमिनि स्यादतत् । न ब्रह्मावगति-  
पुरुषार्थः । पुरुषव्यापारव्याप्यो हि पुरुषार्थः । न  
चास्या ब्रह्मस्वभावमूताया उत्पत्तिविकारसंस्कार-  
प्राप्तयः सम्भवन्ति । तथासत्यनित्यत्वेन तत् स्वाभा-

वादीका मत माध्यमिकके माय एकही होता है । श्रव  
मायावादी बोलता है वेदांती मकल अर्थखडार्थबोधक उर  
समर्गागोचर शब्दकाऽर्थ गुणसवन्ध जिस्का गोचर अथात विषय  
होता नही वैसी प्रमा बोलनेसे निर्विशेषब्रह्मविषयिणी जाना  
जाय वेदात समस्त वही प्रमाही उत्पन्न करते हैं मत्य ज्ञान-  
मनत बोलने से असत् जड परिच्छिन्न ब्रह्मका स्वरूप नही ।  
एही मायावादीका व्याख्या । गो जैसाऽगोऽर्थात् गो भिन्नमे  
भिन्न ब्रह्म भी तद्रूप अर्थात् जहादि में भिन्न एही शून्यवादी  
बोहका मत इसमे इनीका एकही है । जैनका मखा  
जैमिनीका मत है ॥ वेदोक्त कर्म करकेऽदुःख हानि सुखका  
लाभ एही जैमिनिका मत है ।

व्यानुपपत्ते । नचोत्पत्त्याभावि व्यापारव्याप्यता ।  
 तस्मान्न ब्रह्मावगति पुरुषार्थ इति । न चैतदुभय-  
 मप्यस्तीत्याह ।—“फलजिज्ञास्यभेदाच्च” फलभेद-  
 विभजते । “अभ्युदयफल धर्मज्ञान” मिति जिज्ञा-  
 साया वस्तुतो ज्ञानतन्त्रत्वात् ज्ञानफल जिज्ञासा-  
 फलमिति भाव । न केवल स्वरूपत फलभेद-  
 स्तदुत्पादनप्रकारभेदादपि तद्भेद इत्याह । तच्चानु-  
 ष्ठानापेक्ष ब्रह्मज्ञानञ्च नानुष्ठानान्तरापेक्षम् । शाब्द-  
 ज्ञानाभ्यामान्नानुष्ठानान्तरमपेक्षते । नित्यनैमित्तिक-  
 कर्मानुष्ठान सह भावस्यापास्तत्वादिति भाव ।  
 जिज्ञास्यभेदमात्यन्तिकमाह । भव्यस्य धर्म इति ।  
 भविता भव्य कर्त्तरि कृत्य । भविता च भावकव्यापार-  
 निवर्त्ततथा तत्तन्त्र इति । तत प्राक्ज्ञानकालि-  
 नास्तीत्यर्थः । भूत सत्य सदेकान्ततो न कदाचिदस-  
 दित्यर्थः । न केवल स्वरूपतो जिज्ञासयोर्भेदो ज्ञापक-  
 प्रमाणप्रवृत्तिभेदादपि भेद इत्याह । “चोदना-  
 प्रवृत्तिभेदाच्च ।” चोदनेति वैदिकशब्दमाह । विशेष-  
 षण सामान्यस्य लक्षणात् प्रवृत्तिभेद विभजते ।  
 “या हि चोदना धर्मस्ये”ति आत्तादीना पुरुषाभि-  
 प्रायभेदानामसम्भवादपौरुषेय वेदे चोदनोपदेश ।

अतएवोक्त (जैमिनिना) “तस्य ज्ञानमुपदेश” इति  
 सा च मार्य्यं च पुरुषव्यापारे भावनाया तद्विषये  
 च योगादौ, सा हि भावनाविषयः, तदधीन-  
 निरूपणत्वात् प्रयत्नस्य भावनाया । अत्र वन्वन्  
 इत्यस्य धातोर्विषयपदव्युत्पत्ति भावनायास्तहारेण  
 च यागादेरपेक्षितोपयतामवगमन्तो ब्रह्मचोदना  
 तु पुरुषमवबोधयत्येव केवल न तु प्रवर्तयन्त्यव-  
 वाधयति । कुत ? अववाधस्य प्रवृत्तिरहितस्य चोदना-  
 जन्यत्वात् नन्वात्मा ज्ञातव्य इत्यवबोध इति समा-  
 नत्व धर्मचोदनाभिर्ब्रह्मचोदनानामित्यत आह “ न  
 पुरुषाऽवबोधे नियुज्यते”—अयमभिसन्धि न तावत्  
 ब्रह्मसाक्षात्कारे पुरुषो नियोक्तव्यः । तस्य ब्रह्म-  
 स्वाभाव्येन नित्यत्वादकार्य्यत्वात् नापि उपासनाया  
 तस्या अपि ज्ञानप्रकर्षे हेतुभावस्यान्वयव्यतिरेक-  
 सिद्धतया प्राप्तत्वेनाभिधेयत्वात् । नापि शाब्दबोधे ।  
 तस्याप्यधीतवेदस्य पुरुषस्य विदितपदतदर्थस्य समधि-  
 गतशाब्दन्यायतत्त्वस्याप्रत्यहमुत्पत्तेः । अत्रैव दृष्टान्त-  
 साह—“यथाज्ञार्थेति” दाष्टान्तिके योजयति । “तद्व-  
 दि’ति । अपि चात्मज्ञानविधिपरेषु वैदान्तेषु  
 नात्मतत्त्वविनिश्चय शब्द एव ।” अत्रि

तत्तुपरास्ते किन्तु तज्ज्ञानविधिपरा । यत् पराश्च  
 ते तएव तेषामथा न च बाधस्य बोध्यनिष्ठत्वादर्प-  
 क्षितत्वादन्यपरिभ्याऽपि बोधतत्त्वविनिश्चय । समा-  
 रोपणापि तदुपपत्तं । तस्मान्न बोधविधिपरा वेदान्ता  
 इति सिद्धम् । किञ्च द्विरूप ब्रह्मेति जैमिनेरभिमत  
 अनुष्ठेय क्रियारूप प्राप्य चित्सुखरूपश्चति । ननु  
 धर्मानुष्ठानवशाद्भिमतधर्मसिद्धिरिति जेगीयते  
 भवता । तत्र धर्मं किं लक्षणक किं प्रमाणक इति  
 चेत् श्रूयतामवधानेन अस्य प्रश्नस्य प्रतिवचन प्राच्या  
 मीमांसाया प्रदर्शित जैमिनिना मुनिना । सा हि  
 सोमासा द्वादशलक्षणी , पुन स्याद्वादप्रसगागत ,  
 तद्यथा—

सप्त चैषा पदार्था सम्यता । सक्षेपमाह ।  
 सक्षेपतस्तु द्वावेव पदाधारिति । बोधात्मको जीव  
 जडवर्गस्त्वजीव इति । यथायोग्य तयोर्जीवा-  
 जीवयोरिममपर प्रपञ्चमाचक्षते । तमाह पञ्चास्ति-

---

फेर स्याद्वादप्रसगागत कहते है सो ऐसे । सात इनो के पदार्थ  
 समत ४ । सक्षेप कहते है । सक्षेपसे दाहो पदाय है ।  
 बाधात्मक जीव । जडवर्ग अजीव २ यथायोग्य जीवाजीवकाए  
 अपरप्रपञ्च कहते है । पञ्चास्तिकायानामिति । सर्व इनो का

कायानामिति । सर्वेषामप्येषामवान्तरप्रभेदानिति ।  
 जीवास्तिकायस्त्रिधा । वद्वोमुक्तौनित्येति । पुद्ग-  
 लास्तिकायः षोढा । पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि  
 स्यावरजङ्गमं चति । धर्मास्तिकायः प्रवृत्तानुमेयो-  
 ऽधर्मास्तिकायः स्थित्यनुमेयः । आकाशास्तिकायो द्विधा  
 लोकाकाशः अलोकाकाशश्च तत्राप्युपरिस्थिताना-  
 लोकानामन्तर्वर्तिलोकाकाशस्तं पामुपरि मुख्यस्थान-  
 मलोकाकाशः । तत्र हि न लोकाः सन्ति तद्वद् जीवा-  
 जीवपदार्थौ पञ्चधा प्रपञ्चितौ आस्रवसवरनिर्जरा-  
 स्त्रयः पदार्थाः प्रवृत्तिलक्षणाः प्रपञ्चतः । द्विधा प्रवृत्ति-  
 सम्यक् मिथ्या च, तत्र मिथ्याप्रवृत्तिरास्रव

अप्यन्तरप्रभेदः । जीवास्तिकायः तिनः प्रकारः । वह १ मुक्त २  
 नित्यश्च ३ । पुद्गलास्तिकायः ४ प्रकारः । पृथिव्यादीक चार  
 भूत स्यावरजङ्गमः । धर्मास्तिकायः प्रवृत्तानुमेयः द्वै ।  
 अधर्मास्तिकायस्थित्यनुमेयः द्वै । आकाशः दोषकारका  
 लोकाकाशः १ अलोकाकाशः २ । तत्रा उपरि उपरि रद्वै  
 दृष्टौ लोकमेव ततर्वात्त लोकाकाशः टनके उपरि मुख्यस्थानऽलोका-  
 कायः । तद्वो लोक नद्वो द्वै । इत्थं जीवाजीवपदार्थ-  
 पञ्चप्रकारः करकः प्रपञ्चः कियः । आस्रवः सवरः निर्जर-  
 तानः पदार्थः प्रवृत्तिलक्षणः कश्चित् द्वै । एतः प्रकार-  
 प्रवृत्ति—सम्यग् चर मिथ्या च तत्र मिथ्याप्रवृत्ति आस्रव



आस्रवयति पुरुष विषयेष्वितौन्द्रियप्रवृत्तिरास्रव ।  
 इन्द्रियद्वाराहि यौरुपज्योतिर्विषयान् स्पृशद्रूपादि-  
 ज्ञानरूपेण परिणमत इति । अन्ये तु कर्माग्रास्रव-  
 माह । तानि हि कर्त्तारमभिव्याप्य स्रवति  
 कर्त्तारमनुगच्छन्तोत्यास्रव सेय मिथ्याप्रवृत्तिरनर्थ-  
 हेतुत्वात् । सवरनिजरौ च सम्यक् प्रवृत्तौ । तत्र  
 शमदमादिरूपा प्रवृत्ति सवर । साध्यास्रवस्रोतसो  
 द्वार स्रवणोतीति सवर उच्यते । निर्जरस्त्वनादि-  
 कालप्रवृत्तिकपायकलुषपुण्यपुण्यप्रहाणहेतुस्तप्तशिला  
 रोहणादि । स हि नि शेष पुण्यापुण्यसुखदु खीप-  
 भागेन जरयताति निर्जर । वन्वोऽष्टविध कर्म ।

हे । इन्द्रियद्वारा यौरुपज्योतिर्विषयों को स्पृशद्रूपादि  
 ज्ञान करके परिणत है । अन्य कर्मों को आस्रव कहते  
 हैं । वे कमकर्त्तारको अभिव्याप्य करके कर्त्ताको अनुगमन करे  
 उक्त आस्रव कहते हैं । माए मिथ्या प्रवृत्ति अर्थ हेतुमती ।  
 सवर निजर सम्यग्प्रवृत्ति है । तह शमदमादिरूप प्रवृत्ति सवर  
 है । आस्रवसातके द्वार कु सवरण करे उक्तु सवर कहते हैं ।  
 निजराती अनादिकालसे प्रवृत्तिकपायकलुषपुण्यपापप्रहाणहेतु  
 तप्तशिलारोहणादिकरके ममस्त पुण्यापुण्यसुखदु खीपभीगकरके  
 क्षीण करे उक्तो निजरा कहते हैं । वध अष्टविध कर्म है ।

तत्र धातिकर्म चतुर्विध । तद्यथाज्ञानावरणीय १  
 दर्शनावरणीय २ मोहनीय ३ अन्तरायमिति ४ ।  
 तथा चत्वार्यधातिकर्माणि । तद्यथा वेदनीय  
 नामिज ० गोत्रिक आयुष्कञ्चेति तत्र सम्यग्ज्ञान  
 न मोक्षसाधन । नहि ज्ञानाद्वस्तुसिद्धिरिति  
 प्रसगादिति विपर्ययो ज्ञानावरणीय कर्मोच्यते  
 अर्हंतदर्शनाभ्या न मोक्ष इति ज्ञान दर्शनावर-  
 णीय कर्म बहुषु विप्रतिषिद्धेषु तीर्थहरैरुप-  
 दर्शितेषु मोक्षमार्गेषु विशेषानवधारण मोह-  
 नीय कर्म । मोक्षमार्गप्रवृत्ताना तद्विघ्नकर  
 विज्ञानमन्तराय कर्म । तानीमानि श्रेयोहन्तृत्वा-

तद्वा धाती कर्म चतुर्विध है मोही ज्ञानावरणीय १ दर्श-  
 नावरणीय २ मोहनीय ३ अन्तराय ४ तैसैही अर्थात् कर्म ।  
 वेदनीय १ नाम २ गोत्र ३ आयु ४ ।

तद्वा सम्यक्ज्ञानमोक्षसाधन नही । नहि ज्ञानसे वस्तु  
 सिद्धि है । प्रसंगसे ज्ञानाच्छाककर्म ज्ञानावरणीय कर्म कहते  
 हैं । केवल दर्शन सेती मोक्ष होता नही ज्ञान दर्शन  
 आवरणीय कर्म कहते हैं बहुषु विप्रतिषिद्धसे तीर्थहरैरने  
 दिखाया है मोक्षमार्ग में विशेषानवधारणरूप मोहनीय  
 कर्म । मोक्षमार्गसे विघ्नकरनेवाला है विज्ञानान्तराय कर्म ।  
 इनचारो को धाती कर्म कहते हैं । अर्थात् कर्म से

दघातिक्रमात्प्रच्यन्ते । अघातिकर्माणि तद्यथा—  
 वेदनीय कर्म शुक्लपुद्गलविपाकहेतु तदन्वोऽपि  
 नि श्रयसपरिपथिनतत्त्वज्ञानविप्रातक्रत्वात् शुक्ल-  
 पुद्गलारम्भकवेदनौयपरमाणुगुण । नामिक कर्म ।  
 तद्वि शुक्लपुद्गलस्याद्यवस्था कानलवृद्धादिमारभते ।  
 गौनिकमव्याकृत । ततोऽप्याद्य शक्तिरूपेणाव-  
 स्थित । आयुष्कन्वायु कार्याति रुधयत्युत्पादनद्वारं  
 शेत्यायुष्क । तान्येतानि शुक्लपुद्गलाद्याश्रयत्वाद्-  
 घातिकर्माणि तदेतत्कर्माष्टकं पुरुष वध्नातीति बन्ध  
 विगणितममस्तक्लेशतद्द्वामनावरणज्ञानस्य सुखैक-  
 तानस्यात्मन उपरिदंशावस्थान मोक्ष इत्येके । अन्ये  
 तूहंगसनशीलोहि जायो धर्माधर्मास्तिज्ञायेन वध-

शुक्ल पुद्गलविपाकहेतु वेदनीय सो दोषकार सोभी मोक्षके  
 विषय परिपथि हे वेदनीय कर्मानुयायो नामिक कर्म करके नाना  
 रूप अवस्था करता है गोचकर्म अज्ञात वो शक्तिरूप करके  
 रहा है । आयुष्कम उत्पादनद्वारा कथन करे उसको आयु कहते  
 है । एह अघाति कर्म है । जैसे आव कर्म करके पुरुषको  
 बधन करे उसको बध कहते है । विगणित ममस्त क्लेशना  
 वरणज्ञानक सुखैकतान आत्माका लोकातावस्थान उसको मोक्ष  
 कहते है । तदा मात पदार्थ जीवादि अवातर भेदमहित उप

‘स्वरिमोक्षात् यद्गृहं गच्छत्येव स मोक्ष इति । तत्रैते  
 नृप पदार्था जीवाद्यः स्वहावातरप्रभेदैरुपन्यस्ता ।  
 तत्र भवेत् चेत् सप्तभगोनय नाम न्यायसवतारयन्ति  
 स्यादस्ति १ स्यान्नास्ति २ स्याद्वक्तव्य ३ स्यादस्ति  
 नास्ति ४ स्यादस्ति अवक्तव्य ५ स्यान्नास्ति अवक्तव्य ६  
 स्यादस्तिनास्ति युगपद्वक्तव्य ७ चेति । स्याच्छब्द  
 तद्व्यं निपातस्तिङन्तप्रतिरूपको अनेकान्तद्योतो  
 यथाहु वाक्ये ध्वनेकातद्योतिगस्य प्रति विशेषणं ।  
 स्यान् निपातोऽर्थयोगित्वात्तिङन्तप्रतिरूपक । यदि  
 पुनरयमनेकातद्योतरु स्याच्छब्दो न भवेत्तदा स्याद-  
 स्तीति वाक्ये स्यात्पदमनर्थक स्यात् । तद्विद्वमुक्तमर्थ-  
 योगित्वात् इति । अनेकान्तव्यातकत्वे तु स्यादस्ति  
 कथञ्चिदस्तीति स्यात् पदात् कथञ्चिदर्थोऽस्तोत्वनेना-  
 नुक्तं प्रतीयत इति नानर्थक्यम् । तथाच स्याद्वाट

स्याम स्तिप यथा मर्षेण नामभङ्गी न्याय उत्तरने हे । स्यादस्ति  
 स्यादास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्य स्यादस्ति अवक्तव्य  
 स्यादास्ति इवत्य स्यादस्तिनास्ति युगपद्वक्तव्य ७ स्याद्वक्तव्य  
 ए निपात तिङन्तमदग अनेकातयोगक । तादृश विधि  
 अनेकान्तद्योतक स्यात् अंसा निपात हे तिङन्त प्रतिरूपक हे  
 नो हेर ए अनेकात न होय तो स्यादस्ति इम भाषाये स्यात्पद

सर्वथैकातत्यागात् किं वृत्तं चिद्विधे मत्तभगीनय<sup>प्र</sup>  
 हेयादेयविशेषकत् । किं वृत्ते प्रत्यये खुल्वय,  
 पातो विधिना सर्वथैकातत्यागात् समस्वेक-  
 यो भगस्तव यो नयस्तदपेक्ष सन हेयोपादेव  
 भेदाय स्याद्वाट कल्पते । तथा हि य  
 वस्त्वस्यैवेत्यैकाततन्मत् सर्वथा सर्वदा सर्व  
 सर्वात्मनाऽस्यैवेति न तद्दोषाजिहामाभ्या क्वचित्  
 कदाचित् कथञ्चित् कश्चित् प्रवर्त्तते निवर्त्तते प्राप्  
 प्रापणीयत्वात् हेयज्ञानानुपपत्तेश्च । अनेकातपक्षे  
 क्वचित् कदाचित् कस्यचित् कथञ्चित् सत्त्वे हानो-  
 पादाने प्रेनावृत्ता कल्पते इति ।

अनर्थक होय । इस वाक्ये उक्त अर्थके योगमे अनेकातद्योतक  
 होनेसे कथञ्चिदस्तीति अथ जाना जाता है इसमे स्यात् पदका  
 अनर्थकता नहीं है ।

तथाच स्याद्वाट सर्वथैकातत्याग मेती ज्ञानविधि मत्तभगी  
 नयापेक्ष हेय उपादेय विशेष करनेवाला है । वस्तुतः सर्ववस्तु  
 सर्वथा सर्वदा सर्वात्मा करके विद्यमान है कही त्याग कही  
 यद्वय कथञ्चिन् कश्चिन् प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप प्राप्तप्रापणीयहेयज्ञान  
 दोनों को अनुपपत्ति मेतो इसवाक्ये अनेकातमे क्वचित् कौद्  
 फानमें किमो को कौद् प्रकार करके अथको बोध होता है  
 बुद्धिमती को कल्पित होता है ।

